श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

मानस-प्रसङ्ग

[चतुर्थ भाग]

लेखक

"मानस-राजहंस" पंडित विजयानन्द त्रिपाठी

श्रीमान् वरमेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव, नागौद नरेश के शुभ दान से प्रकाशित

प्रकाशक
मंत्री—मानससंघ
पो० रामवन, वाया सतना

प्रथम संस्करण] [मूल्य ||-)

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

श्रीरामचरितमानस तथा गोस्वामीजीके अन्य ग्रंथोंके आधार पर विविध विषयोंकी उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन 'श्रीमहेन्द्र पुस्तकमाला' द्वारा करनेकी अनुमति मानससंघको प्रदान करनेकी कृपा श्रीमान् नरमेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव नागौद नरेशने की है। संघ इसके लिये आपका विशेष आभारी है।

हर्ष है कि मालाकी यथेष्ट उन्नति हो रही है। यह पाचवाँ पुष्प "मानस-प्रसङ्ग" पांच भागों में पूर्ण होगा। अन्य पुस्तकें भी तैयार हो रही हैं।

शारदा प्रसाद
मन्त्री—मानससङ्घ
पो० रामवन, वाया सतना।

मानस-सङ्घ

श्रीरामचरितमानस के प्रचार द्वारा जगतका परम कल्याण हमारा उद्देश है।

केवल एक बार ।।) शुल्क देकर जीवन भरके लिये आप सङ्घ के सदस्य बन सकते हैं।

प्रत्येक सदस्यको वर्ष में श्रीरामचारितमानसके दो पारायण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। दो नये सदस्य बनाने चाहिये।

देश में मानस सङ्घ के सहस्त्रों सदस्य हैं और सैकड़ों शाखायें हैं। एक स्थान पर ६ सदस्य होने पर शाखा हो जाती है।

सङ्घ मानस पारायणका प्रचार करता है। इस कार्य के लिये 'मानसमणि' मासिक पत्र निकालता है और पुस्तकें प्रकाशित करता है।

सङ्घ के इस समय चार ग्रन्थ माला निकल रही हैं। १—श्री मानस रत्नावली ग्रन्थ माला २—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला ३—श्री कौशलेन्द्र कथा माला ४—श्री रामदास भक्तमाला।

आप सदस्य बनें, दूसरों को बनावें, पत्र मंगावें और पुस्तकोंका अध्ययन करें। सदस्य फार्म यहाँ लिखने से भेज दिये जावेंगे।

निवेदक - मन्त्री, मानस संघ।

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला पुष्प ५

मानस-प्रसङ्ग



[चतुर्थ भाग]



लेखक

'मानस-राजहंस' पंडित विजयानंदजी त्रिपाठी

प्रकाशक
मन्त्री—मानससंघ
पो० रामवन,
वाया सतना ।



मुद्रक
माधो प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद ।

मानस-प्रसङ्ग

चतुर्थ भाग

जे गावहिं यह चरित संभारे।
तेइ येहि ताल चतुर रखवारे॥
सदा सुनहिं सादर नरनारी।
तेइ सुर-वर मानस अधिकारी॥

अर्थ—जो लोग इस चरित्र को सँभाल कर गाते हैं, वेही इस सरोवर के चतुर रखवारे हैं, और जो नरनारी आदर के साथ सुनते हैं, वे ही इस मानस के अधिकारी श्रेष्ठ देवता हैं।

जे गावहिं—यहाँ चारों घाटों के वक्ताओं के लिये गाना ही लिखा है। शङ्करजी के लिये उमा कहती हैं।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा।
सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥

भुसुण्डिजी के लिये कहा गया है कि—

प्रेम सहित कर सागर गाना।

याज्ञवल्क्यजी स्वयम् कहते हैं:—

रघुपति कृपा जथा मति गावा।
मैं यह पावन चरित सुहावा॥

और श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

रघुबीर चरित पुनीत निसदिन दास तुलसी गावई।

परन्तु यहाँ 'गाना' का मुख्य अर्थ सङ्गीत नहीं बनता। न तो प्रश्न पूछने पर उत्तर देते समय कोई सङ्गीत छेड़ता है और न यहाँ सङ्गीत के किसी उपकरण वाद्य ताल आदि की चरचा है, अतः यहाँ लक्षणा

वृत्ति से अर्थ करना होगा, कि प्रेम और आदर के साथ बखान करना और इसी अर्थ में इस शब्द का बारबार प्रयोग हुआ है, यथा—

रिपुकर रूप सकल तै गावा।
अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥ तथा—
राम चरित बिचित्र बिधि नाना।
प्रेम सहित कर सादर गाना॥ इत्यादि

यहाँ 'जे गावहिं' कह कर ग्रन्थ कर्त्ता ने गान में सबका अधिकार माना है, केवल गान का सामर्थ्य अपेक्षित है। यहाँ तो काग कहते हैं, और गरुड़ सुनते हैं, अपने-अपने समाज में सभी को अधिकार है। देव समाज में साक्षात् शंकर वक्ता हैं। मुनि समाज में याज्ञवल्क्य जी वक्ता हैं। पक्षि समाज में भुसुण्डि जी वक्ता हैं, नर समाज में श्रीगोस्वामी जी वक्ता हैं।

यह चरित संभारे—बात इतनी ही है, कि इस चरित्र को संभाल कर गावें, असावधानी न होने पावे। शब्द, अर्थ, ध्वनि, प्रसङ्ग, साधन, सिद्धान्त, रसादि बिगड़ने न पावे। शब्द, अर्थ, प्रसङ्गादि में तोड़ मरोड़ न होने पावे, क्षेपक को स्थान न मिलने पावे। अति आदर और प्रेम से वर्णन हो, जिसमें श्रोता कृत कृत्य हो जाँय, यही सब इस चरित्र के गान में सावधानी है।

दूसरी बात यह है कि इस कथा को किसे सुनाना और किसे न सुनाना, इस बात से भी सावधान रहना चाहिये, यथा—

यह न कहिअ सठहीं हठ सीलहिं।
जो मन लाइ न सुन हरिलीलहि॥
कहिअ न लोभिहिं क्रोधिहिं कामिहिं।
जो न भजै सचराचर स्वामिहि॥
द्विज द्रोहिहिं न सुनाइअ कबहूँ।
सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥
राम कथा के तेइ अधिकारी।
जिन्ह के सतसंगति अतिप्यारी॥

गुरुपद प्रीति नीति रत जेई।
द्विज सेवक अधिकारी तेई॥
ताकहुँ यह विशेष सुख दाई।
जाहि प्रान प्रिय श्री रघुराई॥

येहि ताला—इस श्रीरामचरितमानस रूपी ताल (जिसमें संवाद-रूपीचार घाट हैं, प्रबन्ध रूपी सात सोपान हैं। सीयराम रूपी जल जिसमें भरा है, (जिसमें चौपाई पुरइन; युक्तिसीप; छन्द, सोरठा, दोहा, कमल; ज्ञान विराग और विचार हंस; ध्वनि, अवरेव, गुण और जाति मछलियाँ; नवरस जप, तप, योग, विराग जलजन्तु; सुकृती, साधु, नाम, गुणगान, जलविहङ्ग; सन्तसभा अवराई; श्रद्धा बसन्तऋतु; क्षमा, दया और दम लता वितान; शमयम नियम फूल; ज्ञान फल; अन्य कथा प्रसङ्ग शुक पिकादि पक्षी; पुलक-बाटिका, बाग और बन; तथा सुख विहङ्ग समाज हैं) के रक्षा की बड़ी आवश्यकता है। रक्षा न होने से जल की शुद्धता तथा सरोवर के अन्य उपकरणों में भेद पड़ जायगा। सरोवर की पवित्रता, मनोहरता, कार्य्य-कारिता नष्ट हो जायगी।

तेइ चतुर रखवारे—इस चरित्र के गान करने वाले ही रखवारे हैं और संभाल कर गान करने वाले चतुर रखवारे हैं। राम चरित का गान करना ही इस सरोवर की रक्षा करनी है। गान न किया जाय तो क्षीण प्रचार होकर चरित सर ही नष्ट हो जाय। अतः इस श्री राम-चरितमानस की रक्षा का भार इसके गान करने वाले पर ही है, अतः यह उनका कर्तव्य है, कि चतुरता के साथ गान करें, जिसमें श्रोता कृत कृत्य भी हो जाँय और सरोवर में किसी प्रकार की गन्दगी और उसके उपकरणों में किसी प्रकार की न्यूनता या परिवर्तन न होने पावे। अर्थात अर्थ बिगड़ने न पावे, कोई अक्षर टूटने न पावे, यदि दूसरा ऐसा करे तो उसे रोके।

यथा सं० १७०७ काशिराज की प्रति में पाठ है।

'तव बतकही गूढ़ मृगलोचनि।
समुझत सुखद सुनत भयमोचनि'।

इसके बाद की जितनी प्रतियाँ हैं, सब में 'भयमोचनि' पाठ है। भय सोचनि और 'भयमोचनि' के लिखावट में नाम मात्र का ही भेद है। टीकाकार और व्यास लोग भी, भयमोचनि पाठ मान कर, अर्थ करते हैं, परन्तु सावधान अर्थ करने वाले को यह बात बिना खटके नहीं रह सकती, कि सुखद और भयमोचनि तो एकही बात है। तब बतकही में गूढ़ता कैसे आई ? बतकही में गूढ़ता तो तब आवे, जब सुनने में दूसरा भाव हो और समझने में दूसरा भाव हो। अतः 'भय-मोचनि' पाठ ठीक हो नहीं सकता, और प्राचीनतम प्रति में 'भयसोचनि' पाठ है, अर्थात् भयसूचन करने वाली। इससे गूढ़ता आ गई कि बतकही सुनने में भय सूचित करती है, पर समझने से सुख देती है। यदि चरितागान करने वाले, सावधानी से काम लेते, तो 'भयमोचनि' पाठ का प्रचार न होता।

इस अर्धाली में गावहिं 'सँभारे और ताल' ऐसे पद आये हैं जो सङ्गीत के प्रसङ्ग में लगते हैं, अतः यहाँ मुद्रालङ्कार हुआ, यथा—

मुद्रा प्रस्तुत पद विषै औरै अर्थ प्रकास।
अली जाइ किन पीउ तहँ जहाँ रसीलो वास ॥

अतः श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि सावधानी से गान करने वाले ही चतुर रखवारे हैं। रखवारा चतुर होना ही चाहिये। नहीं तो उसकी फिर रक्षा न हो सकेगी।

सदा सुनहिं—अर्थात निरंतर सुनते हैं। भगवच्चरित को नित्य सुनना चाहिये। इसमें प्रतिपद् अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, और चतुदर्शी आदि अनध्याय का नियम नहीं है। यह धारणा न हो, कि इस कथा को तो कई बार सुन चुके हैं, पुनः पिष्टस्य पेषणम् करने में क्या लाभ है ? इस कथा में ऐसा अलौकिक रस है कि यह पुरानी होती ही नहीं। प्रकृत जिज्ञासु की तो नित्य नई प्यास बढ़ती ही जाती है, यथा—

रामचरित जे सुनत अघाहीं।
रस बिशेष जाना तिन्ह नाहीं ॥

दूसरी बात यह है, कि जितनी कथा सुनी जाय उतना ही उससे विशेष लाभ है। जीवन क्षण भंगुर है, कौन इन्द्रिय किस समय जवाब दे देगी, इस बात का ठिकाना नहीं है, अतः इसे नित्य ही सुनना चाहिये, क्योंकि—

तबहिं होइ सब संसय भङ्गा।
जब बहु काल करिअ सतसङ्गा॥

आदर नर नारी—जो नर नारी सदा आदर के साथ सुनते हैं, क्योंकि मन लगा कर सुनना ही आदर के साथ सुनना है। जिस समय कथा होती रहे, उस समय मन में किसी दूसरी बात को स्थान देना कथा का अनादर है, यथा—

एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ।
मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ॥

स्वयम् भगवान् रामचन्द्र उपदेश देते हुए लक्ष्मण जी से कहते हैं कि—

थोरेहि महँ सब कहौं बुझाई।
सुनहु तात मति मन चितु लाई॥

शङ्कर भगवान कहते हैं—

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास॥
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयेउँ कैलास॥

याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

तात सुनहु सादर मनु लाई।
कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥

गोस्वामीजी कहते हैं—

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

इसमें नरनारी का समान अधिकार है, यथा—पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।

ते सुरवर—जिस भाँति मानस सरोवर में सदा लोकपालादि श्रेष्ठ देवता स्नान करते हैं, उसी भाँति इस रामचरितमानस में स्नान करने वाले 'नरनारी' ही श्रेष्ठ देवता हैं। भाव यह है कि आसुरी सम्पत्ति वाले इसमें स्नान नहीं कर सकते, उनका एक बार भी स्नान करना कठिन है। श्रीरामचरितमानस के पक्ष में प्रसन्न मन से सुनना और समझना ही स्नान करना है यथाः—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।

सो इसका प्रसन्न मन से सुनना और समझना दैवी सम्पद् वाले नर नारियों के लिये ही सम्भव है।

मानस अधिकारी—जिस भाँति मानसरोवर में नित्य के स्नान करने वाले लोकपालादि देवता हैं उसी भाँति रामचरितमानस के नित्य के श्रोता विशेष दैवी सम्पत् वाले हैं वे ही रामचरितमानस के मर्म को समझ सकेंगे यथा—

तबहिं होइ सब संसय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसङ्गा॥

यहाँ गान करने वाले से अधिक महत्त्व सुनने वाले का कहा। गान करने वाला तो पहरादार है, मानस के अधिकारी तो श्रोता ही हैं।

वक्ता का सारा समारम्भ तो श्रोता के लिये ही है ताल के रखवारे का सारा प्रयत्न तो स्नान करनेवालोंके कल्याणार्थ ही होता है और जिसके कल्याण के लिये जहाँ प्रयत्न हो रहा हो वहाँ उसी की मुख्यता है अतः श्रोता को अधिकारी और वक्ता को पहरादार कहा। यद्यपि यात्रियों को पहरेदार का आदेश मानना पड़ता है फिर भी प्राधान्य यात्रियों का ही है, पहरेदार का नहीं। दूसरी बात यह है कि सुननेवाले की कुरुचि है तो रखवारे रक्षा नहीं कर सकते क्योंकि उनकी जीविका अधिकारी के हाथ में है।

अति खल जे बिषई बक कागा।
एहिं सर निकट न जाहिं अभागा॥

संम्बुक भेक सेवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना ॥

अर्थ—जो अति दुष्ट विषयी हैं वे ही अति दुष्ट बक और काग हैं ये अभागे इस ताल के निकट नहीं जाते (क्योंकि) यहाँ घोंघा, मेढक और सेवार के समान नाना रस की विषय कथाएं नहीं हैं।

अति खल जे बिषई—भाव यह कि तीन प्रकार के जीव होते हैं विषयी साधक और सिद्ध, यथा--

बिषयी साधक सिद्ध सयाने।
त्रिविध जीव जग वेद बखाने॥

सो तीनों रामचरित के ग्राहक हैं। सिद्ध, यथा—

जीवन मुक्त महामुनि जेऊ।
हरिगुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥

साधक, यथा—

भव सागर चह पार जो पावा।
राम कथा ताकहँ दृढ़ नावा॥

विषयी, यथा—

विषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा।
श्रवन सुखद अरुमन अभिरामा॥

सो सिद्ध और साधु में तो खलता का आरोप भी नहीं किया जा सकता। विषयियों में ही खल होते हैं, और उन खलों में भी अति खल होते हैं, जिनमें अवगुणों का अत्यंत उत्कर्ष होता है। इन दोनों प्रकार के खलों की श्री गोसाईं जी ने बन्दना की है। सामान्य खलों को 'खल-गन' कहा है, और अति खल को 'खल' कह कर बन्दना की है, यथा—

बहुरि बंदि खल गन सति भायें।
जे बिनु काज दाहिने बायें॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरें।
उजरे हरष विषाद बसेरें॥

हरिहर जस राकेस राहु से।
पर अकाज भट सहस बाहु से॥
जे परदोष लखहिं सह साखीं।
पर हित घृत जिनके मनमाखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा।
अघ अवगुन धनधनी धनेसा॥
उदय केतु सम हित सब ही के।
कुम्भ करन सम सोवत नीके॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिमि उपल कृषीदल गरहीं॥

यहाँ तक सामान्य खलों की बन्दना है, ये हरिहर यश के निकट राकेश (पूर्ण चंद्र) के लिए राहु की भाँति कभी कभी आते हैं, अर्थात् भजन में भङ्ग करने के लिए आते हैं, पर अति खल इसलिए भी निकट नहीं आते, यथा—

बन्दौ खल जस सेष सरोषा।
सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथु राज समाना।
पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरिसक्र सम बिनवौं तेही।
संतत सुरा नीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा।
सहस नयन पर दोष निहारा॥

वक कागा—इन अति खल विषयियों की उपमा बक और कागा से दिया। यद्यपि काग, शकुनाधम सब भाँति अपावन हैं, छली, मलीन और अविश्वासी हैं, मूढ़ और मंदमति हैं, यथा—

सकुनाधम सब भाँति अपावन।
छली मलीन कतहुँ न प्रतीती।

मूढ़ मन्द मति कारन (कागा) तथापि बक की गणना प्रथम हैं, क्योंकि यह हंस सा रूप धारण किए हुए, ध्यान नाट्य करता हुआ हिंसा में रत हैं, यथा—

रनतें निलज भाजि गृह आवा।
इहाँ आइ बक ध्यानु लगावा॥

अभागा—भाव यह कि भाग्य का निर्णय सांसारिक सम्पदा से नहीं होता। जब जीवन का ही कुछ ठिकाना नहीं, तो सम्पदा लेकर क्या होगा, यथा—

अरबखरब लौं दरब है उदय अस्तलौं राज।
जौ तुलसी निज मरन है आवै कौने काज॥

इसी लिए कहा है—

काम ते रूप प्रताप दिनेसते,
सोमते सील गनेसते माने।
हरिचंद ते सांचे बड़े विधि ते,
मघवाते महीप विषय सुखसाने।
सुक सारद नारद ते वकता,
चिरजीवहु लोमसते अधिकाने।
एते भये तो कहा तुलसीजोपै.
राजिव लोचन राम न जाने ॥१॥

झूमत द्वार मतङ्ग अनेक जंज़ीर जरे मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरङ्ग मनोगति चंचल पौनके गौनहु ते बढ़ि जाते॥
भीतर चंदमुखी अवलोकति बाहर भूप खड़े न समाते।
एते भये तो कहा तुलसी जो पै जानकीनाथ के रङ्ग न राते॥

अतः 'जो रघुवीर चरन अनुरागी' है वही बड़भागी है, और जो 'भव भञ्जन पद विमुख' है वही अभागी है यथा -

कहु खगेस अस कवन अभागी।
खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥

इसलिए अति खल विषयी बक काग को 'अभागी' कहा।

एहि सर निकट न जाहिं—भाव यह कि सर तो इनका जीवन ही है। जितने मलिन सर हैं, वहाँ बक काग की बहुतायत है, यथा—

जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल।

परन्तु मानस सर के वे निकट भी नहीं जाते। यही एक सर है, जो काक बक से बंचा हुआ है। अभागे बक काग की इस सर में गुजर नहीं, आगे चल कर कहेंगे।

अति हरि कृपा जाहि पर होई।
पाउँ देइ एहि मारग सोई॥

तात्पर्य्य यह कि इस सर के निकट न जाने वाले दयनीय हैं, सोचनीय हैं, यथा—

सोचनीय सब ही बिधि सोई।
जो न छाड़ि छलु हरिजनु होई॥

इन बक काग का मानस के रूपक में प्रवेश नहीं है।

सम्बुक भेक सेवार—सम्बुक कहते हैं घोंघा को, इनके ऊपर की कठोर त्वचा को फोड़ कर भीतर के जीव को काक बकादि बड़े चांव से खाते हैं। ये तालाब के किनारे या छिछले जल में पाए जाते हैं। भेक कहते हैं मेढक को। ये भी जल के सन्निकट ही रहते हैं, छिछले जल में तैरते हुए भी देखे जाते हैं। घोंघा न मिलने पर येही काक बक के भक्ष्य हैं। काक तो इन्हें बड़ी दुर्गति से मारते हैं। सेवार एक प्रकार की लम्बी लम्बी घास है, जो छिछले जल में होती है, इसमें क्षुद्र जन्तु होते हैं, छोटी छोटी मछलियाँ भी जलमल के खाने के लिए आ जाती हैं। कुछ न मिलने पर बक काग के लिए सेवार ही शरण है।

इहाँ न—मानसरोवर बड़ा निर्मल और गम्भीर है। यहाँ घोंघा, मेंढक और सेवार नहीं है। ये सब सामान्य तलैयों में, या नदी के किनारे, जहाँ का जल रुका हुआ है बहुतायत से पाए जाते हैं।

विषय कथा—लौकिक नायक नायिका की कथा ही यहाँ विषय कथा से अभिप्रेत है। श्रृंगार रस के आलम्बन नायक और नायिका

हैं। संक्षेपतः चार प्रकार के नायक होते हैं:– (१) अनुकूल (२) दक्षिण (३) शठ और (४) धृष्ट। निम्नलिखित दो दोहों में इन चारोंका वर्णन है यथा—

एक नारि सो हित करै सो अनुकूल बखानि।
बहु नारिन सो प्रीति सम ताको दक्षिन जानि ॥
मीठी बातैं शठ करै करिके महा बिगार।
आवै लाज न धृष्ट को किये कोटि धिक्कार ॥

ये चार भेद पति के हैं, उपपति के भी दो भेद हैं—(१) वचन चतुर और क्रिया चतुर। वेश्या के वर्णन को रस शास्त्रकारों ने रस हीन माना है, अतः वैशिकनायक का वर्णन रसशास्त्र ने भी नहीं किया। नायिका भेद के प्रकृति, धर्म, वय और अवस्था भेद से अनेक प्रकार हैं।

१—प्रकृति भेद से नायिका भेद, यथा—

पद्मिनी, चित्रनि, संखिनी अरु हस्तिनी बखानि।
विविध नायिका भेद में चारि जाति तिय जानि ॥

२—धर्म भेद से नायिका भेद, यथा—

स्वकिया व्याही नायिका परकीया पर वाम।
सो सामान्या नायिका, जाको धन से काम ॥

३—वय भेद से नायिका भेद, यथा—

बिनु जाने अज्ञात है जाने यौवन ज्ञात।
मुग्धा के द्वै भेद ये कवि सब बरनत जात ॥
मध्या सो जामे दुवौ, लज्जा मदन समान।
अति प्रवीन प्रौढ़ा वहै जाके प्रिय में प्रान ॥

४—अवस्था भेद से नायिका भेद—

प्रोषितपतिका विरहिनी अति रिस पति सो होय।
पुनि पाछे पछिताय मन कलहंतरिता सोय ॥

पति आवै कहु रैन बसि पात खण्डिता गेह ।
जाति मिलन अभिसारिका सजि सिंगार सब देह ।।
पियसहेट आयो नहीं चिंतामन मैं आनि ।
सोचु करै सन्ताप सों उत्कण्ठिता बखानि ।।
बिन पाए सङ्केत पिय विप्रलब्ध मन ताप ।
वासकसज्जा तन सजै पिय आवन जिय थाप ।।
जाके पति आधीन कहि स्वाधिन पतिका ताहि ।
भोर सुनै पिय को गमन प्रवत्स्य पतिका आहि ।।

इनकी तथा इनके उपभेद धीराधीरादिकी कथाएँ विषय कथा हैं ।

रस नाना—रस नाना का वर्णन करते हुए श्री गोस्वामी जी कहते हैं,

भाव भेद रस भेद अपारा ।

एक शृङ्गार रसके ही चुम्बन आलिङ्गनादि अगणित भेद हैं । तत्सम्बन्धी कथाएँ ही नाना रस की विषय कथाएँ हैं जिन के सुनने में विषयी पुरुषों को बड़ा आनन्द होता है । यथा—

पुनि प्रनवौ पृथुराज समाना ।
पर अघसुनहिं सहस दस काना ।।

धर्म शास्त्र में पराई चरचा को अनधिकार चरचा माना है ।

समाना—इसी नाना रस की विषय कथा को शम्बुक, भेक और सेवार के समान कहा है, और उसे अति खल विषयी बक काग का भोज्य बतलाया है ।

जितने सातिशय सुख हैं, उन सब में तीन प्रकार होता है, उच्च-कोटि, मध्यम कोटि तथा सामान्य कोटि । शम्बुक अर्थात् घोंघा बक काग के लिये उच्चकोटि का भोज्य है, मेढ़क मध्यम कोटि का भोज्य है और शैवाल (सेवार) गत जन्तु सामान्य कोटि के भोज्य हैं । इसी भाँति रसोत्कर्ष वाली विषय कथा अतिखल विषयियों के लिये उच्च कोटि की भोग्य हैं, उससे कम उत्कर्ष वाली मध्यम कोटि की भोग्य हैं,

सामान्य कथा सामान्य कोटि की भोग्य हैं, पर अति खल बिना विषय कथा अनवण के रह नहीं सकते, अतः कहते हैं।

तेहि कारन आवत हिअँ हारे।
कामी काक बलाक बिचारे॥
आवत एहि सर अति कठिनाई।
राम कृपा बिनु आइ न जाई॥

अर्थ—इस कारण से काक बक रूप विषयी बिचारे हिम्मतहारे हुए आते हैं। इस सर में आने में कठिनता है, विना राम की कृपा आते नहीं बनता।

तेहि कारण—भाव यह कि बिना कारण के कार्य्य नहीं होता। बक काक उसी सर में जाते हैं, जिसमें 'सम्बुक भेक सेवार' हो क्योंकि यहीं इनका भोज्य है। अतः काक बक की यात्रा का कारण शाम्बुक भेक सेवार की प्राप्ति है। जहाँ इन वस्तुओं की प्राप्ति नहीं है वहाँ बक काक के जाने का कोई कारण नहीं है।

आवत हियहारे—निष्कारण की हैरानी किसे नहीं अखरती, अतः हिम्मत छोड़े हुए आते हैं। 'हिय हारे' पद हिम्मत छोड़ने के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यथा—

बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भयमनि।

भाव यह कि उन्हें जहाँ रामचरितमानस होता हो, वहाँ तक जाना अपार मालूम होता है।

कामी काक बलाक—भाव यह कि अति खल विषयी बक काक तो मानस सर के निकट जाते ही नहीं, परंतु जिनमें खलता की अतिशयता नहीं है, वे जाते हैं, पर हिम्मत हारे हुए जाते हैं, उन्हें जाना अपारमालूम होता है, इसी लिए उन्हें 'कामी काक बलाक' ही कहा अति खल नहीं कहा।

काक बलाक दोनों आमिष भोजी हैं, भेद इतना ही है कि बलाक हंस का वेष बनाए हुए निश्चल होकर ताक लगाये बैठा रहता है,

और काक सतत चञ्चल है। इसी भाँति खल भोग त्याग नहीं कर सकते पर कोई खल तो ऐसे मिथ्याचारी और दम्भी हैं कि साधु वेष में रहकर साधु का आचरण दिखलाते हैं, और कोई प्रत्यक्ष खलता करते हैं। दोनों श्री रामचरितमानस में प्रवेश करना नहीं चाहते, क्योंकि उसमें नाना रस के विषय कथा की चरचा भी नहीं है। ये विवश होने पर किसी भाँति रोते गाते चले जाते हैं, पर जो अति खल हैं, वे कदापि नहीं जाते विवश होने पर उनके शिर में दर्द हो जायगा, बीमार हो जायेंगे, मरने लगेंगे पर जायंगे नहीं। अतिखल और खल में यही भेद है।

बिचारे—भाव यह कि चारा चले तो न जांय। लाचार होने पर ही जाते हैं। यदि स्वामी जाय तो उसके साथ जाना ही पड़ेगा, इसी भाँति अन्य किसी विवशता के पराधीन होकर ही जाते हैं।

एहिसर—भाव यह कि यह मानस सर हिमालय से उत्तर तिब्बत के राज्य में कैलास के सन्निकट है, इतने ऊँचे पर पहाड़ों से घिरा हुआ, यह अद्भुत सर है, लगभग ६० मील के इसकी परिधि है, कई सौ फुट गहरा है, कई नदियों का उद्गम स्थल है। सरयू नदी इसी से निकली हैं। इसी से मिला हुआ रावण सर भी है, इस मानससर को हिंदू और बौद्ध दोनों पवित्र मानते हैं। इसी भाँति यह रामचरित मानस भी कैलाश से सम्बद्ध है और बौद्धों से भी समादृत है यथा—

परमरम्य गिरिवर कैलासू।
सदा जहाँ शिव उमानिवासू।

सिद्ध तपोधन जोगि जन सुर किन्नर मुनि वृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुख कंद॥

हरिहर बिमुख धरमरति नाहीं।
ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरिवर बटविटप विसाला।
नित नूतन सुंदर सब काला॥

त्रिविध समीर सुसीतल छाया।
शिव बिश्राम विटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ।
तरु बिलोकि उर अति सुख भयऊ॥
निज कर डासि नागरिपु छाला।
बैठे सहजहिं सम्भु कृपाला॥
पारबती भलि अवसरु जानी।
गई सम्भु पहं मातु भवानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी।
सोइ पूछन चह सैल कुमारी॥

यह भी वेद पुराण रूपी पावन पर्वतों से घिरा हुआ हृदय में स्थित है। ८४ फलकों तक इसका विस्तार है, और अथाह है। कई भाषाओं में इसका अनुवाद होकर देश विदेशों में इसका प्रचार है, सरयू काव्य का इसी से समुद्भव है। इसी के साथ रावण का भी यश है, यथा—

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥

इस मानस सर को भी अनेक विधर्मी आदर की दृष्टि से देखते हैं।

आवत अति कठिनाई—यह मानस श्रीगोस्वामी जी के हृदय में है, अतः यात्रियों के लिए 'आवत' शब्द का प्रयोग करते हैं 'जात' नहीं कहते। सर तो अनेक हैं, पर जाने में ऐसी कठिनाई कहीं भी नहीं है जिन यात्रियों ने वहाँ से लौट कर अपनी यात्रा का वर्णन लिखा है उसे पढ़कर हृदय काँप उठता है। ऐसा भयानक मार्ग है, कि वहाँ से जो लौट आवे तो उसका पुनर्जन्म ही समझना चाहिए। दुर्लंघ्य पर्वत, भयावने वन, नदियों के घोर धार को पार करना, खाने पीने के वस्तुओं की कौन चलावे, कुछ दूर तक जलाने को लकड़ी भी नहीं मिलती।

अब तो बहुत कुछ सुभीता हो गया है, फिर भी अति विकट यात्रा है। हजारों यात्रियों में कहीं कोई एकही वहाँ जाने का साहस करता है।

राम कृपा बिनु—भाव यह कि ऐसा विकट मार्ग है, कि आगे चलने का साहस नहीं होता। यदि परमेश्वर की कृपा हो तो आते बनै। सब विघ्नोंका नाश परमेश्वरीय कृपा से ही सम्भव है। गुरु कृपा, शास्त्र कृपा, और आत्म कृपा होने पर भी यहाँ काम नहीं चलता। गुरु कृपा शास्त्र कृपा से माहात्म्य जान कर यात्रा की रुचि होती है, आत्म कृपा से इतने बड़े आयासको जीव स्वीकार करता है, पर विघ्नों के दूर करने का उपाय तो सिवा राम कृपा के दूसरा नहीं है, यथा—

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहि तेही।
राम सुकृपा बिलोकहि जेही॥

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवौ सकल कलिमल दहन॥

आइ न जाई—मार्ग की भयानकता देख कर आगे पैर उठाने का साहस नहीं होता, पदे पदे विघ्नों से अभिभूत होकर आगे बढ़ने का संकल्प त्याग देता है। 'न जाइ' पद नहीं बनने के अर्थ में ग्रन्थ भर में प्रयुक्त है, यथा—

राम कृपा बिनु सुनु खगराई।
जानि न जाइ राम प्रभुताई॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती।
जनु येतनिअँ बिरंचि करतूती॥
कहि न सकहिं सुखमा जसि कानन।
जो सत सहस होहिं सहसानन॥
बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी।
लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥

इत्यादि—

कठिन कुसंग कुपंथ कराला।
तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥

गृह कारज नाना जंजाला।
तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला॥

अर्थ—घोर कुसङ्ग ही भयानक बुरा रास्ता है, उनके बचन ही व्याघ्र सिंह और सर्प अथवा दुष्टगज हैं, घर का काम काज और अनेक प्रकार जंजाल ही अत्यन्त दुर्गम बड़े २ पहाड़ हैं।

कठिन कुसंग—भगवच्चरणारविन्द के प्रेमी साधुओं का सङ्ग सुसङ्ग है, और जिसे भगवच्चरणों में प्रीति न हो ऐसे असन्तों का संग कुसंग है।

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ।
भूलेहु संगति करिय न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहिं घालै हरहाई॥

तथा—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि त्यागिए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥

यदि घर के प्राणी ही हरि विमुख हुए, तो कठिन कुसंग कहना चाहिए, यथा—

सुतदार अगार सखा परिवार,
बिलोकु महा कुसमाजहि रे।

ये मानस यात्रा के बड़े भारी बाधक हैं, ये ऐसे बाधा करने वाले हैं, कि प्राण लेकर ही छोड़ेंगे, श्री रामचरितमानस में प्रवेश नहीं होने देवेंगे। अतः इनका अतिक्रमण करना परम आवश्यक है, यथा—

पिता तज्यो प्रहलाद विभीषण बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तजेउ कन्त बृजवनिता भे मुद मंगलकारी।

कुपंथ कराला—मानस सरोवर की यात्रा में एक मार्ग पड़ता है जिसे निरपनियाँ कहते है, यह कराल कुपंथ है। ऊपर दृष्टि करिए, तो भयंकर पहाड़ों की चट्टाने यम की भाँति डराती हैं, नीचे अन्ध कूप

की भाँति हजारों फीट गहरी खाईं हैं, यात्री के मुख से राम का नाम निकलना कठिन हो जाता है। सिर घूमने लगता है, सब छोड़ कर पाँव और रास्ते पर दृष्टि रहती है। इस रास्ते का पार होना महा कठिन है। तनक सी चूक में यात्री काल के गाल में जा रहते हैं।

'सुतदार अगार सखा परिवार' निरपनियाँ की घाटी हैं, ये श्रीराम-चरितमानस के निकट नहीं जाने देते। इन्ही के फेर में पड़ कर मनुष्य मर जाता है, श्रीरामचरितमानस की यात्रा नही कर पाता, इनके अतिक्रमण करने की इच्छा करने से ही ये ऐसा विकराल रूप धारण करते हैं, कि आगे पैर नहीं बढ़ता।

तिन्ह के बचन—ये सुतदार सखा परिवार ऐसा बचन बोलते हैं, कि प्राण सूख जाता है। श्रीरामचरितमानस को ओर अग्रसर होने का साहस छूट जाता है। बचन क्या है, घोर गर्जन है, श्रीरामचरितमानस की ओर अग्रसर होना इन्हे सह्य नहीं है, समझते हैं, कि यह तो हमारे हाथ से ही निकला जाता है।

व्याघ्र हरि व्याला—जिस भाँति व्याघ्रसिंह और व्याल के दर्शन से मनुष्य अति भयभीत होकर किं कर्तव्य विमूढ हो जाता है, इसी तरह से इनके बचन से हो जाता है। भाई का बचन व्याघ्र है, बाप का बचन सिंह है। 'व्याल' शब्द के दो अर्थ होते हैं, सर्प और दुष्ट हाथी, सो यहाँ दोनो अर्थ का ग्रहण हो सकता है। स्त्री का बचन सर्प है, वह धीरे से फुन्कार छोड़ती है, पुत्र के वचन दुष्ट हस्ती हैं, यह व्याघ्रसिंह से भी अधिक घातक हैं। व्याघ्रसिंह तो कभी बगल भी दे जाते हैं, दुष्ट हस्ती तो सच्चा वैरी होता है, प्राण लेकर ही मानता है।

गृह कारज—घर के कार्य्य कभी समाप्त होने वाले नहीं। मन में आया, कि बस यही कार्य्य है, इसे समाप्त कर लें, तो श्रीरामचरित-मानस की ओर आगे बढ़ें, पर उस कार्य्य के समाप्त होने के पहिले ही दूसरा कार्य्य उससे भी अधिक बड़ा दिखाई पड़ने लगता है। एवम् ऐसी ही कार्य्य परम्परा चली ही आती है।

नाना जन्जाल—अर्थात् अनेक प्रकार के बखेड़े। जिन जिन बखेड़ों का सामना एक राज्य चलाने में पड़ता है, उन्हीं बखेड़ों का सामना गृहस्थी चलाने में पड़ता है। भेद इतना ही है, कि राज्य का स्वरूप बड़ा विस्तृत है; और साधारण गृहस्थी का स्वरूप सङ्कीर्ण है। इन बखेड़ों से भी छुट्टी नहीं, नित्य नये बखेड़े उठा करते हैं।

ते अतिदुर्गम—ये गृहकार्य्य और नाना जन्जाल अतिदुर्गम हैं, इनका पार पाना कठिन है, यथा।

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि सो जागा॥
लोभपास जेहि गर न बंधाया।
सो नर तुह्म समान रघुराया॥

काम क्रोध मद लोभरत गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप॥

सैल बिसाला—'अतिदुर्गम' देहली दीपक न्याय है 'सैल बिसाला' के साथ भी अन्वित होगा। बड़े २ पहाड़ों की चढ़ाई बड़ी कठिन होती है, ऐसे सङ्कीर्ण और विकट मार्ग हैं, कि पैर डगमगाने लगता है, सारी शरीर काँपने लगती है, वे अति दुर्गम हैं, उनके दुर्गमता का घर बैठे अनुमान भी नहीं हो सकता। एक पहाड़ अभी पूरा तय भी नहीं हुआ कि दूसरा गगन चुम्बी पर्वत का दर्शन हो जाता है। उसे भी पार करिये तो उसी भाँति तीसरा खड़ा है। इसी भाँति पहाड़ डाँकते महीनों चले जाइये, तब मान सरोवर तक पहुँच होती है।

इसी भाँति गृहस्थी का अति आवश्यक कार्य्य पूरा भी करे अथवा किसी एक बखेड़े के पार भी पहुँचे; तो उसके पहिले ही एक दूसरे अत्यावश्यक कार्य्य अथवा बखेड़े का सूत्रपात हो जाता है। इसी लिए गृह कार्य्य नाना जंजाल को अति दुर्गम विशाल शैल कहा।

बन बहु विषम मोह मद माना।
नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

अर्थ—मोह, मद मान बड़े बीहड़ बन हैं, नाना प्रकार के कुतर्क भयङ्कर नदियाँ हैं।

मोह मद माना—मोह, अविद्या और अज्ञान, ये सब यद्यपि पर्याप्त वाची शब्द है, अज्ञान ही सब अनर्थ का मूल है, इसी में पड़े हुए लोग सन्सार रूपी स्वप्न देख रहे हैं, यथा—

मोह सकल व्याधिंह कर मूला।
तेहि ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥
मोह निसा सबु सोवनि हारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥

मद, गव और अभिमान ये भी पर्य्यायवाची शब्द हैं। अज्ञान से ही अभिमान होता है, और अभिमान से संसार होता है। यह अभिमान ही सब संसार का मूल है, इसी से अनेक प्रकार के दुख होते हैं, यथा।

संसृति मूल सूल प्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना॥

मान—मीयते अनेन इति मानम्। जिससे नापा जोखा जाय, उसे मान कहते हैं। अर्थात् विषमती मान है। यह समदृष्टि का विरोधी है, यही द्वन्द विपत्ति तथा भ्रमफन्द रूप है। इसी के नाश होने पर समदृष्टि होती है, जिसे ज्ञान कहते हैं, यथा—

ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं।
देख ब्रह्म समान सब माहीं॥

बनबहु बिषम—मोह मद मान को विषय बन कहा, क्योंकि इसी के अन्तर्गत, कुपन्थ रूपी कुसङ्ग, गृह कार्य्य नाना जञ्जाल रूपी शैल, और कुतर्क रूपिणी नदियाँ हैं।

बीहड़ बन अनेक भय विषाद और परिताप के कारण होते हैं। बन स्वयम् भयङ्कर होते हैं, रास्ते कुशकण्टक और कङ्कड़ियों से भरे रहते हैं। गज बाजि आदि सवारियों की वहाँ गुञ्जाइश नहीं होती, पैदल चलना पड़ता है। बड़े बड़े पहाड़ मिलते हैं, जिनके मार्ग अतीव

दुर्गम होते हैं। कन्दर, खोह, नदी, नद और नाले मिलते हैं, जिनके देखने से भय उत्पन्न होता है, उल्लंघन करना तो दूर की बात है। भालू, बाघ, भेड़िया, सिंह और जंगली हाथियों का दहाड़ सुन कर हृत्कम्प होने लगता है। बड़े भाग्य से भोजन शयन और वसन का सुभोग जुटता है, सो भी जमीन पर सोना, वल्कल पहिनना, और कन्दमूल फल खाना। पहाड़ का पानी रोग का घर है, बन की याद आने से धीर पुरुषों का धैर्य्य छूट जाता है, संक्षेपतः बन में बड़ी विपत्ति है, यथा—

कानन कठिन भयंकर भारी।
घोर घाम हिमु बारि बयारी॥
कुस कंटक मग कांकर नाना।
चलब पयादेहिं बिनु पद त्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥
कन्दर खोह नदी नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा।
करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥

भूमि सयन बलकल बसन असन, कन्दफल मूल।
तेकि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥

नर अहार रजनीचर चरहीं।
कपट वेष बिधि कोटिक करहीं॥
लागइ अति पहार कर पानी।
बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥

इसी प्रकार मोह, मद, मान भी अनेक भय विषाद और परिताप के कारण हैं, इनमें पड़ कर मनुष्य दिङ्मूढ़ होकर दुख पाता है, और इनसे बाहर निकलने का उसे रास्ता नहीं सूझता।

कुतर्क—जिस विचार से वस्तु सिद्धि हो, उसे तर्क कहते हैं, और जिससे वस्तु सिद्धि न हो, केवल विषाद उत्पन्न हो उसे कुतर्क अथवा कर्कश तर्क कहते हैं, यथा—

संसय सर्प ग्रसेउ मोहिं ताता।
दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥

नदी भयङ्कर नाना—बन में अनेक नदियां मिलती हैं। उनके वेग और लहर को देख कर भय होता है। उनमें यदि पड़ गए, तो कहाँ बहा ले जावेगी कुछ ठिकाना नहीं, सिवा प्राण जाने के अन्य गति नहीं। इसी भांति मोह मद मान के होने से ऐसे कुतर्क उठते हैं, जिनसे किसी प्रकार से रक्षा नहीं है।

इन सब के अतिक्रमण की जिसे सामर्थ्य हो उसे मानस सर की प्राप्ति हो, इसी भाँति मोह, मद, मान तथा कुतर्क का जो अतिक्रमण कर सके, उसे श्री रामचरितमानस को प्राप्ति हो सकती है।

कथा सुनने से कुछ नहीं होता, यह मोह है, मैं कोई मूर्ख हूँ, जो दूसरे से कथा सुनूँ यह मद है, तीन कौड़ी के आदमी व्यासासन पर बैठेंगे, मैं नीचे कैसे बैठूंगा, यह मान है, जो कथा सुनते हैं उन्हीं ने कौन सा स्वर्ग जीत लिया, यह कुतर्क है। इसी भांति अनेक प्रकार से मोह, मद, मान और कुतर्क बाधा करता है।

जे श्रद्धा संबल रहित, नहि संतन्ह कर साथ।
तिन कहुँ मानस अगम अति, जिनहि न प्रिय रघुनाथ॥३८॥

अर्थ—जिन्हें श्रद्धा रूपी पाथेय (राह खर्च) नहीं है, सन्तों का साथ नहीं है, और न जिन्हें रघुनाथ प्रिय हैं, उन्हें मानस अति अगम है।

जे श्रद्धा संबल रहित—आस्तिक्य बुद्धि को श्रद्धा कहते हैं। संबल पाथेय अर्थात् राह खच को कहते हैं। जिस भाँति राह खर्च के बिना रास्ता पार नहीं होता उसी भांति श्रद्धा बिना धर्म नहीं होता, जिस भाँति बिना पृथ्वीके के गन्ध नहीं होता उसी भाँति बिना श्रद्धा के धर्म नहीं होता, यथा—

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनुमहि गन्ध कि पावै कोई॥

श्रद्धा साक्षात् भवानी अन्नपूर्णा है, विश्वास शङ्कर हैं, इनके बिना अन्तर्दृष्टि नहीं होती, और बिना अन्तर्दृष्टि के मानस का दर्शन कहाँ, यथा—

भवानी शङ्करौ बन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।

मानसरोवर के यात्री को सामान खरीद कर अपने साथ ले जाना होता है, क्योंकि वहाँ रास्ते में कुछ नहीं मिलता, और वस्तु की कौन चलावे जलाने की लकड़ी नहीं मिलती। अतः बिना अपने पास सामान रहे वहाँ पहुँच ही नहीं सकता। इसी भाँति रामचरितमानस के पास पहुँचने के लिये श्रद्धा चाहिये बिना श्रद्धा के कोई रामचरिमानस के पास पहुँच नहीं सकता।

नहिं संतन्ह कर साथ—सन्तों का साथ मानसरोवर और श्री रामचरितमानस दोनों पक्ष में लगेगा। मानसरोवर की यात्रा प्रायेण साधु लोग ही करते हैं, उन्हीं का रास्ता देखा हुआ रहता है। उनका साथ मिल जाय तो, उन्हीं के साथ चला जाय, नहीं तो वहाँ जाने के लिये न तो कोई सीधा रास्ता है, न कोई रास्ता बतलाने वाला मिलता है, यदि भाग्यवश किसी मनुष्य से भेंट भी हुई, तो उसकी बोली नहीं समझ में आती।

श्रीरामचरितमानस तक पहुँचने के लिये भी साधु सङ्ग की परम आवश्यकता है, बिना साधु सङ्ग के इसका मर्म खुलता नहीं, अतः श्रद्धा होने पर भी साधु सङ्ग की परम आवश्यकता है।

जिनहि न प्रिय रघुनाथ—यह पद भी दोनों पक्ष में लगेगा। जिसको रघुनाथ प्रिय नहीं हैं, वह मानसरोवर ऐसे दुर्गम तीर्थ की यात्रा ही क्यों करेगा? बिना प्रयोजन तो कार्य्य होता नहीं, और मानसरोवर यात्रा में किसी सांसारिक प्रयोजन की सिद्धि है नहीं, वहां तो केवल भगवत् प्रीत्यर्थ ही यात्रा करनी है। भगवत् प्रीत्यर्थ प्राण भी जाँय तो

कोई परवाह नहीं' ऐसी जिसकी धारणा नहीं है, वह इतना बड़ा सङ्कट क्यों उठावेगा, और अपने प्रिय प्राणों को संशय में क्यों डालेगा? मानस यात्रा से उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

इसी भाँति जिसे रघुनाथ प्रिय नहीं हैं, वह श्री रामचरितमानस के सन्निकट क्यों जायगा। अपने परम प्रेमास्पद भगवान् के चरित्र जानने के लिये ही लोग श्रीरामचरितमानस की शरण में जाते हैं। जिन्हें उनसे प्रेम ही नहीं है, वे अपने वहिश्चर प्राण पुत्र कलत्रादि से वियुक्त होकर, उनके कोप भाजन होकर, आवश्यक कार्य्यों को छोड़ कर व्यर्थ श्रीरामचरितमानस के पीछे क्यों पड़ेंगे?

तिन कहं मानस अगमअति—भाव यह कि मानस अगम तो सभी को है, पर जिन्हें यह तीनों बातें नहीं हैं, उन्हें अति अगम है। (१) श्रद्धा (२) सत्सङ्ग और (३) भगवच्चरणारविन्दों में प्रेम, ये तीन बातों के होने से ही श्रीरामचरितमानस में प्रवेश सम्भव है।

जब तक ऐसी श्रद्धा न होगी कि जो कुछ श्री रामचरितमानस में लिखा है, सो अक्षर अक्षर ठीक है, यदि मेरे समझ में नहीं आता तो मेरा अभाग्य है, तब तक उसमें श्रीरामचरितमानस के समझने की पात्रता नहीं आती है। मेरे एक बड़े अनुभवी विद्वान मित्र को जोकि स्वयम् सुकवि हैं, यह धारणा हो गई थी कि—

सेवक सुख चह मान भिखारी।
व्यसनी धनु सुभगति व्यभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥

इस चौपाई में तीसरा पद कवि से बनाते न बना। 'चार गुमानी' का कोई अर्थ नहीं होता, लाचार होकर उसका अन्वय लोभी के साथ करके यह अर्थ करना पड़ेगा, कि लोभी घमण्डी दूत यश चाहे पर यह अर्थ न हुआ, किसी भाँति कवि की सम्मान रक्षा ही हुई। मैं उस समय कोई उत्तर न दे सका, पर मन में यह बात आई कि जिस पर

महेश अनुकूल हों (सो महेस मोहि पर अनुकूला) उससे बनाते न बने, यह हो नहीं सकता। अवश्य अपनी बुद्धि का दोष है।

अतः विचारने लगा, कोई बात मन में बैठती न थी, पर मैं अपने अध्यवसाय में दृढ़ था, इस पद के पीछे लगा ही रहा। एक दिन श्री गोस्वामीजी की कृपा से आंख खुल गई, अर्थ स्पष्ट प्रतिभात होने लगा। उक्त पण्डितजी को सुनाया, बड़े प्रसन्न हुए। सीधा अर्थ था कि 'गुमानी यदि चार चाहे'। गुमानी का अर्थ संशयी, यथा—

तुलसी जुपै गुमान को होतो कहूँ उपाउ।
तौकि जनकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ॥

और 'चार' से चार फल का ग्रहण है, जिस भाँति 'नवसत्त साजे सुंदरी सब मत्त कुन्जर गामिनी' में नव सत्त से सोलह श्रृङ्गार का ग्रहण होता है। अतः अर्थ हुआ कि 'संशयी चार फल चाहे' तो उसका चाहना आकाश से दूध दुहने के समान है, क्योंकि—

'नायम् लोकोस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः'।

संशयात्मा के दोनों लोकों में से कोई नहीं बनता। उसका चार फल चाहना व्यर्थ है।

मैंने इस अवसर पर श्रद्धा का बल देखा, नहीं तो पण्डितजी विद्या, बुद्धि अनुभवादि में सब प्रकार से मुझसे श्रेष्ठ थे, उन्हें यह विचार था कि कवि मनुष्य ही तो है, उससे चूक हो गई। मुझे यह धारणा थी, कि यह ग्रन्थ दैवी अनुग्रह से लिखा गया है, इसमें चूक न होगी, चूक मेरी बुद्धि की है, अतः मैं सब प्रकार से दुर्बल होता हुआ भी श्रद्धा बल से कृत कार्य्य हुआ। मेरा यह विश्वास है, कि यदि श्रद्धा बनी रहे, तो एक न एक दिन सन्देह दूर हुए बिना नहीं रहता। निश्चय श्रद्धा श्रीराम चरितमानस पथ के लिए पाथेय है।

सन्त सङ्ग बिना, विषय के पर्यवसान का पता नहीं चलता। इस ग्रंथ में सब विषयों का पर्यवसान भक्ति में ही हुआ है। ग्रंथ की बारीकी तक सत्सङ्गी की ही पहुँच हो सकती है, नहीं तो यह संदेह उत्पन्न होगा कि बाल्मीकि, व्यास, तुलसीदासादि सभी ने उर्मिला के साथ

अन्याय किया, लक्ष्मण जी तो बन गए, पर उर्मिला की चर्चा ही कोई नहीं करता। सत्संग से ही यह भावना होती है, कि वे महात्मा किसी पर अन्याय करने वाले नहीं हैं। लक्ष्मणजी बन गए तो सही, पर रामजी की सेवा के लिए अपनी इच्छा से गए, उन्हें वनवास मिला नहीं था। यदि उन्हें बनवास मिला होता तो उर्मिला भगवती जनकनंदनी की भाँति किसी के रोके न रुकतीं।

दूसरी बात यह है, कि कवि का कहीं पर चुप रह जाना, हजार बोलने से बढ़ कर काम करता है। कवि ने यहाँ पर चुप रह कर यह दिखलाया कि उर्मिला भगवती ने पति के सेवा धर्म में बाधा पहुँचने के भय से श्वास तक न लिया, उनका इतना बड़ा त्याग जनकनंदनी के अनुराग से कम नहीं है, हजार लक्ष्मण उर्मिला सम्वाद लिखने पर भी इस बूँद से भेट नहीं हो सकती।

सन्त सङ्ग से ही मनुष्य गलित अभिमान होकर ग्रंथकार की बारीकी को देख सकता है, (दुर्बोध हैं) प्रतीयमान असामञ्जस्य का सामञ्जस्य बिठला सकता है, वही देख सकता है, कि ग्रंथकार की विचारधारा भक्ति की ओर चली जा रही है, उसी ओर अपनी दृष्टि रखने से सब असामञ्जस्य ठीक हो जाते हैं। अतः श्रीरामचरितमानस का पथ पदर्शक संत सङ्ग ही है।

भगवच्चरण में प्रेम न रहने से तो इस चरित का आनंद ही जाता रहता है। उसे पदे पदे भगवत महिमा प्रतिपादन खटकता है, भावना उठती है, कि ग्रंथकार को इस बात की बड़ी फिक्र रहती है, कि कहीं कोई रामजी को आदमी न समझले। ठीक है इसीलिए तो यह ग्रंथ ही बना है इसकी फिक्र रहना क्या वेजा है। जिस चरित्र से सती को मोह हुआ, गरुड़ को हुआ, उस मोह से श्रोता की रक्षा के लिए ग्रंथकार की फिक्र अत्यंत उपादेय है। स्वयम् भगवान वासुदेव को ही फिक्र थी, कि कहीं कोई मुझे आदमी न समझ ले, नहीं तो उसके कल्याण में बड़ी बाधा पड़ेगी, अतः गीता में कहते हैं—

'अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्'
परं भावमजानन्तो मम भूत महेश्वरम्
(६—११)

मैं मनुष्य का शरीर धारण किए हुए हूँ इससे लोग मेरी अवज्ञा करते हैं, मेरे परम भाव को नहीं जानते कि मैं लोक महेश्वर हूँ। श्री गोस्वामी जी स्वयम् कहते हैं कि,—

उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू।
चली सुभग कविता सरितासी॥
रामबिमल जस जल भरितासी।

अर्थात् पहले मैं भक्त हूँ और पीछे कवि हूँ भगवच्चरणानुराग न रहने से इस ग्रंथ का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता, अतः आयास के साफल्य के लिए 'रघुनाथ का प्रिय लगना' अत्यन्तावश्यक है।

फलतः उपर्य्युक्त तीनों बातों (श्रद्धा, संत सङ्ग और रामानुराग) के न होने से श्रीरामचरित्र मानस अत्यंत अगम हो जाता है।

जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई।
जातहिं नीद जुड़ाई होई॥
जड़ता जाड़ विषम उर लागा।
गएहुं न मज्जन पाव अभागा॥

अर्थ—यदि कोई कष्ट करके चला भी जाय, तो वहाँ पहुँचते ही उसे नीद रूपी जूड़ी आ जाती है, जड़ता रूपी भयानक जाड़ा कलेजे में पैठ जाता है, अभागा जाने पर भी स्नान नहीं करपाता।

जो करि कष्ट—कष्टों का वर्णन ऊपर हो चुका है। राम चरित सुनने के लिए जाना कोई साधारण बात नहीं है, उसमें श्रद्धा सत सङ्ग और भक्ति रहित पुरुष के लिए मानसरोवर यात्रा की भाँति कठिनता है। पहले तो उसी का जी नहीं चाहता, क्योंकि उसके मन लगाव की कोई बात ही उसमें नहीं है, यदि वह जी पर जब्र करके चलने को तैयार होतो उसके घर वालों को उसका जाना बुरा लगता है कि कथा सुनने जा रहा है, कहीं साधु न हो जाय, वे जली कटी सुनाने लगते हैं, एक

से एक आवश्यक काम कथा में जाने के समय उपस्थित हो जाते हैं, अनेक कुभावनाएँ मन में उठने लगती हैं, जो उसे कथा तक नहीं पहुँचने देतीं। अतः ऐसे लोगों का कथा में जाना महा कष्टकर है, इतना कष्ट उठा कर कौन कथा में जाय।

जाइ पुनि कोई—यहाँ पुनि शब्द का कोई अर्थ नहीं है, क्रिया पर विशेष बल देने के लिए बोलने का मुहावरा है, जैसे—

'मैं पुनि निजगुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत'

'तुम पुनि राम राम दिन राती।
सादर जपहु अनंग अराती'॥

'मैं पुनि' करि प्रवान पितुवानी' आदि

बहुत से लोग तो कथा के लिये घर से ही नहीं निकल पाते, कितने रास्ते से लौट आते हैं, कोई ही वहाँ पहुँच पाते हैं। इन कठिनाइयों के वर्णन में तनिक सी भी अत्युक्ति नहीं है, पड़ोस में ही राम चरित हो रहा है, और अति मनोरम हो रहा है; दूर दूर से लोग आते हैं, पर पास के लोग नहीं पहुँच पाते। इसी लिए कहते हैं, कि अश्रद्धालुओं में से कोई ही पहुँच पाते हैं। वे वहाँ जाकर छिपते नहीं, स्पष्ट पहिचाने जाते हैं, ग्रन्थकार उनका लक्षण कहते हैं।

जातहि नीद—वहाँ पहुँचने मात्र की देर है उन बक काक तुल्य पुरुषों को नीद आते देर नहीं लगती, दो चार शब्द भी कथा के उनके कानों में नहीं पड़ने पाते और जब तक कथा होती रहती है, वे बराबर ऊँघा करते हैं, आस पास के लोगों के सावधान करने पर चौंक भी पड़ते हैं, पर फिर ऊँघने लगते हैं, जब तक कथा जारी है, तब तक उन्हें नींद छोड़ती ही नहीं, सिवा कथा समाप्त करने के उनकी नींद टूटने का कोई उपाय ही नहीं है।

जुड़ाई होई—नीद का हटाना उनके काबू की बात नहीं है। जिस भाँति मानसरोवर के यात्रियों में से कुछ एक को मानसरोवर पहुँचते ही जाड़ा देकर बुखार आ जाता है। उस बुखार का हटाना उसके काबू की बात नहीं। बुखार होने से वहाँ जाने के सभी लाभों से वह वञ्चित

हो जाता है उसका जाना न जाना बराबर हो जाता है वह चाहता भी है कि उस जूड़ी से उसकी विनिर्मुक्ति हो, साथी उपचार भी करते हैं पर जूड़ी उसे छोड़ती नहीं, इसी भाँति ऐसे बक काक पुरुष की नींद इस जूड़ी से कम नहीं है। उन विचारों के हजार प्रयत्न पर भी नींद नहीं जाती। उस नीद के कारण उनका जाना न जाना बराबर है, बल्कि उनका सोना उनके पास के बैठे हुए लोगों को अखरता है वे थोड़ा बहुत उपचार भी बीच बीच में करते जाते हैं पर सब प्रयत्न व्यर्थ जाते हैं उस नीद का कोई अन्य उपाय नहीं है। नींद की उपमा जूड़ी से देकर यह दिखलाया कि कोई यह नहीं चाहता कि मुझे जूड़ी आवे जूड़ी बल पूर्वक आती है। अतः श्रोता रूप से उपस्थित पुरुष यह चाह नहीं सकता कि उसे नींद आवे पर नीद बलात्कार से आती है।

जड़ता जाड़ विषम—यहाँ विषम शब्द का अन्वय देहली दीपक न्याय से जड़ता और जाड़ दोनों के साथ है। जड़ता की उपमा जाड़े के साथ दी गई है। जिस भाँति जूड़ी आने में विषम जाड़ा स्वाभाविक है उसी भाँति नीद आने में विषम जड़ता स्वाभाविक है। जिस भाँति जूड़ी के विषम जाड़ा से यात्री को मानसरोवर के अद्भुत सौंदर्य्य का दर्शन तक नहीं हो सकता उसी भाँति विषम जड़ता से उनीदे श्रोता को रामचरित की अद्भुत मनोहरता का अनुभव नहीं हो सकता। जूड़ी के जाड़ा से सब इद्रियाँ और मन पराभूत हो जाते हैं कम्प होने लगता है उसी भाँति नींद की जड़ता से सब इंद्रियाँ और मन पराभूत हो जाते हैं और वह ऊँघ ऊँघ कर गिरने लगता है।

उर लागा—जाड़ा उसके कलेजे में घुस जाता है, कितना ही लिहाफ़ ओढ़ाओ ऊपर चढ़ कर दबाओ, आग तपाओ वह जाड़ा जाता ही नहीं क्योंकि कलेजे के भीतर घुसा हुआ है। इसी भाँति कितना भी सावधान करो, उनकी बाँह पकड़ कर हिलावो कड़ी बातें बोल दो, पर उन सोने वालों की जड़ता जाती ही नहीं, क्योंकि वह उनके हृदय में घुस गई है, बाहरी प्रयोग सब निष्फल जावेंगे।

गएहुँ न मज्जन पाव—जाने पर भी स्नान फलकी प्राप्ति नहीं होती, मानसरोवर में स्नान कर पाने का सौभाग्य उसे नहीं है। वह लिहाफ और कम्बल के बाहर शिर नहीं निकाल सकता, नहाना तो दूर की बात है। इसी भाँति ऐसे सोने वालों को कथा श्रवण का सौभाग्य नहीं है, कथा श्रवण की ओर उनका चित्त भी नहीं जाता, आदर के साथ श्रवण तो दूर की बात है। यहाँ श्रवण की उपमा मज्जन के साथ है, यथा—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।

अभागा—जिस भाँति मानसरोवर का यात्री जिसे वहाँ पहुँचने पर जूड़ी आ जाती है अभागा है, उसी भाँति वह श्रोता जिसे कथा में पहुँचने पर निद्रा आजाती है अभागा है। प्रयत्न करने पर जब उसमें फल लगे, तो उस फल के भोगने में उस समय सामर्थ्याभाव हो जाना पूरा अभाग्य है। यहाँ पूर्व जन्म का दुष्कृत ही बाधक हुआ। इस जन्म में प्रयत्न करके तो वह फल तक पहुँच चुका था।

इसी भाँति प्रयत्न कर के कथा में पहुँच जाने वाले का पूर्व जन्म का पाप ही बाधक होता है जो कथा में जाने के फल, सादर कथा श्रवण का उपयोग नहीं होने देता।

अभाग आरम्भ से ही उसके साथ है पहिले तो वह इसके निकट नहीं आने देता था, यथा—

अतिखल जे विषई बक कागा।
एहिसर निकट न जाहिं अभागा॥

फिर मार्ग में अनेक विघ्न उपस्थित किया, अन्त में पहुँचने पर, उसे फल भोग से वञ्चित किया, इस लिये कहते हैं—

'गयहुँ न मज्जन पाव अभागा'

सो अभाग से ही उपक्रम कर के अभाग से ही उपसंहार करते हैं। भाव यह कि मनुष्य शरीर पाकर साक्षात् वेदावतार रामकथा श्रवण का अवसर हाथ न लगना परम अभाग्य है।

इतनी कठिन मानस यात्रा करने पर भी जिसे स्नान करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, वह फिर मानस यात्रा करेगा इसकी कौन आशा है, अतः यही बात निश्चित हुई, कि मानसरोवर का अवगाहन उसके भाग्य में नहीं है। इसी भाँति जो कथा में जाकर भी सोया, उसके विषय में समझ लेना चाहिये, कि श्रीरामचरित श्रवण उसके भाग्य में नहीं है।

करि न जाइ सर मज्जन पाना।
फिरि आवै समेत अभिमाना॥
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा।
सर निंदा करि ताहि बुझावा॥ २॥

अर्थ—उससे उस सरोवर में स्नान आचमन करते नहीं बनता वह अभिमान के सहित लौट आता है। फिर यदि उससे कोई पूछने आता है, तो वह उसे सरोवर की निन्दा करके समझा देता हैं।

सर मज्जन पाना—मज्जन करने से पुण्य के अतिरिक्त थकावट मिटती है, जल पान करने से मन प्रसन्न होता है, यथा—

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयेऊ।
सुचि जलु पिअत मुदित मन भयेऊ॥

मज्जन करने की महिमा आगे चल कर कहेंगे।

मज्जन पान करने के लिए ही मानसरोवर यात्रा की थी। मज्जन करने से तीर्थ का सर्वाङ्ग से स्पर्श होता है, तीर्थ के जल से सारा शरीर भींग जाता है, सारे शरीर में तीर्थ के प्रभाव का प्रवेश होता है। जो किसी कारण से तीर्थ में जाकर भी स्नान नहीं कर पाते वे आचमन तो अवश्य ही कर लेते हैं, आचमन करने का भी पुन्य हैं। तीर्थ के जल के अभ्यन्तर प्रवेश से हृदय शुद्ध होता है, पाप कटता है।

इसी भाँति श्रीरामचरित को कहने सुनने से अविवेक दूर होता है, यथा—

मज्जन पान पाप हर एका।
कहत सुनत एक हर अविवेका॥

करि न जाइ—भाव यह कि जूड़ी के कारण जाड़ा उसके कलेजे में ऐसा जाकर घुस जाता है, कि मज्जन तो दूर की बात है, वह उस सरोवर में आचमन भी नहीं कर पाता। इसे अभाग्य कहते हैं। ऐसे दुरूह मार्ग को तय करके किसी भाँति मान सरोवर तक पहुंचा भी, तो ऐसी आकस्मिक घटना हुई, कि वह उसके लाभ से वञ्चित रह गया।

इसी भाँति कामी पुरुष यदि घर के सब विघ्न बाधाओं को अतिक्रमण करके कथा तक पहुँचा भी तो उसे नींद ऐसी आ दबाती है, वह ऐसा जड़ीभूत हो जाता है, कि वह कुछ सुन नहीं सकता, यदि कान में दोचार शब्द पड़ भी जाँय तो उसे एक अक्षर समझ में नहीं आता।

फिर आवे—ऐसा अभागा यात्री जब तक वहाँ ठहरा रहेगा, जूड़ी उसका पिण्ड नहीं छोड़ेगी, लाचार हो कर उसे बिना स्नान आचमन किए ही लौट आना पड़ता है। इसी भांति कामी पुरुष को, जब तक वह कथा में बैठा है, ऐसा निद्रा दबाए रहता है, कि वह बिना कुछ सुने समझे ही कथा में से लौट आता है।

सहित अभिमाना—उसे पश्चाताप नहीं होता, कि मेरा भाग्य ऐसा खोटा है, कि मैं यात्रा के फल से ही वञ्चित रहा, बल्कि उसे अभिमान होता है, कि यह स्थल भिखमङ्गे या पहाड़ियों के लायक है, हम लोगों के पधारने योग्य नहीं है। यहाँ रक्खा ही क्या है वीरान हिममण्डित पर्वत ही पर्वत है, इसी भांति अभागे श्रोता को अपनी निद्रा तथा जड़ता पर पश्चात्ताप नहीं होता, कि कथा में जाकर भी मैं कुछ सुन समझ न सका, प्रत्युत उसे अभिमान होता है, कि कथा में रक्खा ही क्या है, पंडित जो बैठकर टें टें किया करते हैं, यह प्रतिष्ठितों के जाने योग्य स्थान नहीं है।

जो बहोरि कोउ—भाव यह है लाखों यात्रियों में से कोई ही मान सरोवर जाने की इच्छा करता है, और उसी को वहाँ के हाल जानने की

इच्छा होती है। अतः यह सुनकर कि अमुक यात्री वहाँ मानसरोवर से हो आया है, वह उसके पास वहाँ का हाल पूछने जाता है।

इसी भांति कथा सुनने का इच्छुक, यह जानकर कि अमुक व्यक्ति भी कथा सुन आया है उसके पास पूछने जाता है, कि कैसी कथा होती है। कहना नहीं होगा, कि ऐसे इच्छुकों की संख्या बहुत ही कम होती है, हजारों में किसी को ही अभिलाषा होती है, इसी लिये 'जौ बहोरि कोउ' कहा।

पूछन आवा—कोई पूछने आया, कि वहाँ जाने में कौन कौन सी दिक्कतें हैं और वहाँ उन कठिनाइयों से रक्षा का क्या उपाय है, वहां आपने क्या क्या देखा? इसी भांति यदि कोई ऐसा विमुख फिरे हुए श्रोता से पूछने गया, कि वहाँ पर कथा होती है! कौन लोग सुनने आते है? कैसी कथा होती है? आपने क्या सुना समझा?

सर निन्दा—मानसरोवर की स्तुति तो दूरगई वह उसकी निन्दा प्रारम्भ करता है, कि बड़ी खराब जगह है। बड़ा नाम सुनकर गये थे। वहाँ कुछ नहीं, और बड़ा अस्वास्थ्यकर स्थल है। किसी भाँति जीते बच आये, उससे तो मेरे गांव की तलैया ही भली है।

इसी भांति अभागे श्रोता भी कथा की निन्दा करते हैं, कि कथा में क्या रक्खा है। खाने कमाने का ढङ्ग है, वहाँ जाना, अपना समय बरबाद करना है, वहाँ गंजी भङ्गड़ शोहदे जुटते हैं, भले लोगों के जाने योग्य स्थान नहीं है, यथा क०।

'मानसर मानसर शोर चहु ओर सुन्यौ'
साधुहू बखानै मानसर अति नीको है।
परवत पखान सूनसान सो मसान जैसो
मारग विषम खङ्ग विकट नदी कोहै॥
मनमें उचाट वाट श्रम ते शिथिल गात,
तीरथ नहि जुलुम जवाल यह जीको है॥

लीजिये न नाम काम कीजिये अपानो जाय,
ऊंची है दूकान पकवांन तहँ फीको है ॥ १ ॥
पग पग मग बीच मीचही दिखावै रूप।
नाक दम आवे निषि दिन दुख झेलते ॥
गात्र परै ऐसे देश जंह सुख लेश नहीं।
जूड़ी चढ़ै आखिन तुषार गिरि पेखते ॥
शूल उठे शिर में प्रचण्ड हिय हूल उठैं,
कूलते कराल बात आवै अंग वेधते ॥
मानस तलैया भली गाँवही की।
कूद के कलैया छोटे छैया जहं खेलते ॥

ताहि बुझावा—मान सरोवर के विषय में ऐसा समझा देते हैं, कि बात उसके गले उतर जाती है, और फिर उसका यात्रा का संकल्प जाता रहता है इसी भाँति रामचरित के विषय में ऐसी ऐसी बातें कहते हैं, कि उस पूछने वाले के मन में बातें बैठ जाती हैं, और फिर उस कथा के प्रति उसकी अश्रद्धा हो जाती है।

'अति खल जे विषयी बक कागा' से लेकर यहाँ तक अनधिकारी का वर्णन किया, अब इससे आगे अधिकारी कहेंगे।

सकल विघ्न ब्यापहिं नहिं तेही।
राम सुकृपा बिलोकहिं जेही ॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई।
महा घोर त्रय ताप न जरई ॥३॥

अर्थ—उसे ये सब विघ्न बाधा नहीं देते, जिसे रामजी सुन्दर कृपा से देखते हैं। वही आदर के साथ उस तालाब में मज्जन करता है, और महाघोर त्रय तापों से नहीं जलता।

सकल विघ्न—जिन विघ्नों का ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। अर्थात् (१) हृदय से हार मानना (२) बड़ी बड़ी विभीषिकाएं

(३) दुलङ्घ्य पर्वत (४) घोर बन (५) भयङ्कर नदियाँ (६) संबल का अभाव (७) सत्सङ्ग का अभाव और (८) जूड़ी ये सब विघ्न बाधाएँ रामकृपा न होने से ही उपस्थित होती हैं, यथा।

आवत एहि सर अति कठिनाई।
रामकृपा बिनु आइ न जाई॥

ब्यापहिं नहिं तेही—ये विघ्नतो बने ही हैं, और सब जाने वालों को व्यापते हैं। विषय कथा न होनें से राम कथा की ओर जाने का (१) किसी तरह जीही नहीं चाहता। (२) जाना भी चाहें तो घर के लोग डाटते फटकारते हैं। (३) अनेक आवश्यक कार्य्य आ पड़ते हैं, (४) उसमें अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं, (५) अनेक कुतर्क उठते हैं, (६) श्रद्धा नहीं होती (७) कोई साथी नहीं मिलते (८) कथा में नींद आने लगती है। ये बाधाएँ सब को व्यापती हैं, जिनके कारण कथा सुनने के लिए लोग घर से बाहर नहीं निकलते, यदि निकले भी तो वहाँ तक पहुँच नहीं पाते, रास्ते में ही कोई बड़ा जरूरी काम-निकल आता है, किसी तरह पहुँचे भी तो ऊँघने लगते हैं।

यह सब होते हुए भी कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हें ये विघ्न नहीं व्यापते, अर्थात् उपस्थित तो उनके सामने भी होते हैं, पर उन्हें विचलित नहीं कर सकते।

राम सुकृपा बिलोकहिं जेही— भाव यह कि कथा सुनना क्रिया साध्य नहीं है, कृपा साध्य है। अपने पुरुषार्थ से यदि कोई चाहे कि राम कथा सुनलें तो सुन नहीं सकता। साक्षात् वेदार्थ ही राम चरित्र रूप से प्रकट होता है, उसका भी तात्पर्य्य मातृभाषा में कहा जा रहा है। फिर भी सब के बूते की बात नहीं कि उसे सुनलें, उसे वही सुनने में समर्थ होता है, जिस पर रामजी की भलीभाँति कृपा हो। रामजी की कृपा दृष्टि में ही सर्व कल्याणकारी तथा सर्व विघ्ननाशिनी शक्ति है। इन आठों प्रकार के विघ्नों के नाश की एक महौषधि प्रभु की कृपा विलोकनि है, यथा—

(१) कृपा दृष्टि कपि भालु विलोके।
भए प्रबल रन रुकहिं न रोके॥
(२) कृपा दृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किए सुरवृंद
(३) राम कृपा बलु पाइ कपिन्दा।
भए पच्छ जुत मनहु गिरिंदा॥
(४) जासु कृपा छूटहिं मद मोहा।
(५) संशय सर्पग्रसन उरगादः।
शमन सुकर्कसतर्क विषादः॥
(६) जो इच्छा करिहहु मन माहीं।
हरिप्रसाद कछु दुरलभ नाहीं॥
(७) बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।
(८) जानकीसकी कृपा जगावती सुजान् जीव जागु त्यागि मूढ़तानुरागु श्रीहरे।

आठ प्रकार के विघ्न जो कि राम कथा सुनने के लिए जाने वालों को उपस्थित होते हैं, उनहीं की तुलना उन आठ प्रकार के विघ्नों से की गई, जो मानसरोवर के यात्रियों को उपस्थित होते हैं। राम कृपा से उन्हीं विघ्नों के नाश का उदाहरण ऊपर दिया गया।

सोई—अर्थात् वही भगवान् के कृपा पात्र, जिसे मार्ग की विघ्न बाधाएँ भगवत् कृपा से विचलित नहीं कर सकीं। रामजी की कृपा से ही मानसरोवर का यात्री सब बाधाओं का उल्लंघन करता हुआ अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है, उसी तरह श्रीराम कृपा से ही श्रोता श्रीराम कथा में, सब प्रपञ्चों को अतिक्रमण करके जाने में समर्थ होता है, यहाँ 'सोइ' कह कर अन्य का व्यावर्तन किया।

सादर मज्जन—श्रद्धा के साथ मज्जन करने से ही शास्त्रोक्त फल होता है; क्योंकि विना श्रद्धा का किया हुआ हवन दान तप आदि जितने कर्म हैं वे असत् कहलाते हैं उनका इस लोक या परलोक में कहीं फल नहीं होता यथा—

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।

सम्भव है कि कोई ऐसे हों जिन्हें जूड़ी न आवे और लोगों के देखा देखी गोता भी लगालें, पर यदि उनके मन में तीर्थ का आदर नहीं है तौभी उन्हें शास्त्रोक्त सम्यक् फल नहीं होता इसी भाँति यदि किसी को कथा में नींद न भी आई पर उसने आदर-पूर्वक कथा न सुनी मन में कोई और बात सोचता रहा तौभी उसे कथा श्रवण का फल नहीं होता। उसके विषय में भी यही समझना चाहिये कि उस पर भगवत् कृपा नहीं हुई।

सर मज्जन करई—वहाँ (मान सरोवर में) जाकर उस सर में स्नान करने का विधान है, सर का जल गरम कर के स्नान करने का नहीं। इस प्रकार का स्नान सर का स्नान नहीं है। इसी भाँति राम कथा में जाकर वक्ता की कही हुई बातों के सुनने का विधान है। उसकी कही हुई बातों के किसी अंश को लेकर तर्क वितर्क मन में उठा देने से कथा का सम्यक् श्रवण नहीं होता अतः वह कथा के फल से वञ्चित रह जाता है यथा—

बारंम्बार सकोप मुनि करै निरूपन ज्ञान।
मैं अपने मन बैठि तब करहुँ विविध अनुमान॥
क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान।
माया बस परिछिन्न जड जीव कि ईस समान॥
एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊं।
मुनि उपदेस न सादर सुनेऊं॥

कैलास दर्शनकार लिखते हैं कि मैं दूर तक (मानस सरोवर के) जल में चला गया जो आनंद मान सरोवर के स्नान से मिला वह लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। गोता लगाते ही मार्ग के सकल कष्ट विस्मृत हो गए, थकावट मिट गई इत्यादि। इसी भाँति सादर राम कथा श्रवण का प्रत्यक्ष फल कहते हुए श्रीग्रंथकार कहते हैं।

रामचंद्र गुन बरनै लागा।
सुनतहि सीताकै दुख भागा॥

तथा—

मन करिविषय अनल बन जरई।
होइ सखी जौं एहि सर परई॥

महा घोर त्रय ताप—आधिभौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक, ये ही तीन ताप हैं, इन्हीं तीनों तापों से जीव जला करता है, राम राज्य में केवल ईन तापों से लोगों की रक्षा थी, यथा।

देहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहि काहुहिं ब्यापा॥

सो मान सरोवर का स्नान राम राज्य सा सुखकर है, इसमें गोता लगाते ही तीनों ताप दूर होते हैं, इसी भाँति राम कथा श्रवण भी राम राज्य में प्रवेश है। इसके आधिभौतिक अर्थ से आधि भौतिक ताप दूर होता है, आधि दैविक अर्थ से आधि दैविक ताप दूर होता है, अध्यात्मिक अथ से अध्यात्मिक ताप दूर होता है। अतः इस सर में पड़ कर वह सुखी हो जाता है, उसकी जलन मिट जाती है, यथा।

सुनु नृप जासु विमुख पछिताहीं।
जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥

न जरई—मानस सरोवर स्नान की भाँति तीनों ताप की निवृत्ति का उपाय राम कथा श्रवण है। इसीलिये महात्मा लोग श्रीराम कथा श्रवण में अघाते नहीं, यथा।

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ।
जिन्ह के राम चरन भल भाऊ॥
जो नहाँइ चह एहिं सरभाई।
सो सत संग करौ मनलाई॥ ४

अर्थ—वे लोग इस सर को कभी छोड़ते ही नहीं, जिन्हें रामजी के चरणों में भला भाव है, जिसे इस सरोवर में स्नान करने की इच्छा हो वह मन लगा कर सतसङ्ग करे।

ते नर— चौरासी लाख योनियों में यह अविनाशी जीव, माया से प्रेरित, काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ घूमा करता है कभी वह प्रभु निष्कारण कृपा करने वाला करुणा कर के मनुष्य शरीर दे देता है इसी लिए कहा है कि—

'बड़े भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहि परलोक संवारा॥

दो०—सो परत्र दुख पावै सिर धुनि-धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईश्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ॥

अतः मनुष्यों में भी दो प्रकार हैं। एक वह जो मनुष्य शरीर से लाभ उठाते हैं, भगवत् चरणों में प्रेम करते हैं, दूसरे वे जो विषय में प्रेम करते हैं। यहाँ 'ते नर' कह कर पहले प्रकार के नरों का ग्रहण करते हैं।

यह सर— इस महिम मान सरोवर का अथवा पक्षान्तर में श्रीरामचरितमानस को, जिन के अवगाहन से तीनों ताप नष्ट हो जाते हैं और नर सुखी हो जाते हैं।

तजहि न काऊ—भाव यह कि बस इसी के हो जाते हैं; वे यहाँ पहुँच कर फिर वहाँ से नहीं लौटते, सदा अवगाहन किया करते हैं। लौटें तो फिर तीनों ताप घेर लें, अतः मानसरोवर के तट पर ही डेरा जमा देते हैं और यावज्जीवन उसी के तट पर रहते हैं। इसी भाँति सच्चे श्रोता भी श्रीराम कथा नहीं छोड़ते, वहीं कहीं डेरा जमा देते हैं, जहाँ कथा होती हो, यथा—

आसा वसन व्यसन यह तिन्हही।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥

रामचरन—अरुण मृदुल सेवक सुखदाता, शिव अज पूज्य, ये चरण भक्तों के परम आश्रय है। इन्हीं में महात्मागण ममता ताग को इकट्ठी करके और डोरी बट कर बाँध देते हैं। ये ही चरण शङ्कर मन मानस के कमल हैं, इसी के लिए मुनि लोग अपने मन को भौंरा बनाए रहते हैं, यथा—

जे पद सरोज मनोजअरि उर सर सदैव बिराजहीं।
जे सकृत सुमिरत बिमलता मन सकल कलिमल भाजहीं॥
जे परसि मुनि बनिता लही गति रही जो पातक मईं।
मकरंदु जिनको संभु सिर सुचिता अवधि सुर बर नईं॥
करि मधुप मुनिमन जोगिजन,
जे सेइ अभिमत गति लहैं।

जिनके भलभाऊ -ऐसे चरणों में जिन्हें भली-भाँति भाव (रति) है। उनसे मानसरोवर नहीं छूटता क्योंकि, भक्ति भाव के लिए इससे अधिक उद्दीपन जगती तल में दूसरा नहीं है, यथा—

निरखि सैलसरि बिपिन बिभागा।
भएउ रमापति पद अनुरागा॥

इसी भाँति श्रीराम भक्ति का उद्दीपन श्रीराम कथा से अधिक त्रैलोक्य में दूसरा नहीं है, यथा—

राम चरन रति जो चह अथवा पद निर्बान।
भाव सहित सो येह कथा करौ श्रवन पुटपान॥

एहि सर भाई—'भाई' कह कर श्रीग्रन्थ कर्ता मनुष्य मात्र को सम्बोधन करते हैं, पुकार कर कहते हैं कि यह सर जिसकी उपमा मानसरोवर से दी गई है, बड़ा उत्तम है, इसका जल मधुर मनोहर मङ्गलकारी है। कमल फूले हैं, भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं, चिड़ियाँ चहचहा रही हैं, हंस विहार कर रहे हैं। मछलियाँ आनन्द कर रही हैं, चारों ओर अमबारी फलफूल रही है, हरे भरे बन लगे हुए हैं, ऐसे सरोवर में स्नान करने की इच्छा नहीं होना ही आश्चर्य्य है।

जो नहाइ चह—अतः जिसे नहाने की इच्छा हो। किसी को रोचक नहीं है, 'इच्छा ही न हो' यह दूसरी बात है। कोई यह न समझ ले कि केवल 'कृपा साध्य' होने से यह मनुष्य साध्य नहीं है। क्योंकि भगवत् कृपा स्वयम् मनुष्य साध्य है। मनुष्य चाहे तो भगवत्कृपा हो सकती है। अतः भगवत् कृपा का उपाय कहते हैं।

सो सतसङ्ग करौ—भाव यह कि भगवत् कृपा का सरल तथा अव्यर्थ उपाय सत्सङ्ग है, यथा—

बिना सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ अनुराग॥

और सन्त समाज सब को देश में सुलभ है, यथा—

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥

अतः यह कहने के लिए भी स्थान नहीं है, कि सन्त तो कहीं मिलते ही नहीं, सङ्ग कैसे करूं। सतसङ्ग से श्रीराम कृपा सुलभ है, और श्रीराम कृपा होने से मानसरोवर रूपी श्रीराम चरित का स्नान (श्रवण) अत्यन्त सुगम हो जाता है।

मन लाई—अर्थात् अति अनुराग से सतसङ्ग रूपी जङ्गम तीर्थ-राज में मज्जन करे, सत्सङ्ग में बैठे और उनकी बातों को सुनै और समझे, तो उस पुरुष में मौलिक परिवर्तन हो जाता है, वह दूसरे का दूसरा हो जाता है। राम चरित रूपी मानस सर के अनिच्छुक काक और बक क्रम से कोकिल और हंस हो जाते हैं, तथा।

सुनिसमुझहिं जनमुदित मन मज्जहि अति अनुराग।
लहहिंचारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥
मज्जन फल पेखिय ततकाला।
काकहोहि पिक बकहु मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई।
संत संगति महिमा नहि गोई॥

जो मन लगा कर सत्सङ्ग नहीं करते उनका स्वभाव नहीं छूटता। यथा—

खलउ करहि भलपाइ सुसंगू।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
अस मानस मानस चख चाही।
भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥
भयेउ हृदयँ आनन्द उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥ ५

अर्थ—ऐसे मानस को मन की आखों से देख कर और उसमें नहा कर कवि की बुद्धि निर्मल हो गई, हृदय में आनन्द से उत्साह हुआ, प्रेम और प्रमोद का प्रवाह उमड़ पड़ा।

असमानस—ऐसा पवित्र सुन्दर तथा दुर्लभ मानस तीर्थ जिसका सादर अवगाहन भगवत् कृपा से ही सम्भव है।

जसमानस जेहि विधि भयेउ जग प्रचार जेहि हेतु।
अवसोइ कहउँ प्रसंग सब सुमिरि उमावृष केतु॥

यह प्रतिज्ञा पहिले कर आए हैं। इसमें से एक अंश 'जेहिविधि भयउ' की पूर्ति तो ऊपर हो चुकी है, अब सुठि 'सुन्दर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि' से लेकर 'सो सतसंग करौ मन लाई' तक मानस के स्वरूप का निरूपण किया, अतः कहते हैं, 'असमानस' तीसरे अंश 'जगप्रचार जेहि हेतु' की पूर्ति में आगे का प्रसंग है।

मानस चख चाही—मनमें ही यह मानस तीर्थ, साधु घन की वर्षा से महात्माओं के कथा श्रवण से बना। जहाँ निर्मल अगाध जल एकत्रित होता है, वहाँ धीरे धीरे कमल, भौंरे, हंस, शुकपिकादि पक्षी, जलचर, वृक्षादि आप से आप ही आ विराजते हैं, परन्तु घाट बाँधने से बनता है। एवम् मानस में भी चौपाई, सोरठा, दोहा, छन्द ज्ञान विराग, नवरस ध्वनि अलङ्कारादि क्रमशः आपसे आप प्रादुर्भूत हुए, पर चारों सम्वादों की रचना में कवि को आयास करना पड़ा। इस

भांति मानस के तैयार हो जाने पर कवि ने मन की आँखों से उसकी पर्य्यालोचना की। जिस भाँति मानसरोवर के दृश्यों की पर्य्यालोचना स्थूल नेत्र से की जाती है, उसी भांति इस रामचरितमानस की पर्य्यालोचना कवि ने मानस चक्षु से की। भावार्थ यह कि पहिले भलीभांति गुरु मुख तथा साधु मुख से श्रवण किया, तत्पश्चात् आद्योपान्त मनन किया, मनन करने में ही यह सर साङ्गोपाङ्ग सुन्दर तथा उपयोगी हो गया।

'भरेउ सुमानस सुथल थिराना'

से ही मनन निदिध्यासन आरम्भ है।

इतना ही नहीं विद्या को उपयुक्त करने के लिए प्रवचन भी किया, और लोग दूर-दूर से प्रवचन सुनने के लिए आते भी रहे, जिसका कि बड़ा चमत्कारिक वर्णन कवि मानस यात्रा के रूपक में कर आए हैं।

कवि बुद्धि अवगाहि—तत्पश्चात् कवि की बुद्धि ने उस सर में स्नान भी किया। भाव यह कि श्रवण मनन के बाद निदिध्यासन भी किया। मनन करते ही करते बुद्धि समाहित हो गई। समाधि में ही डूबाडूब की अवस्था होती है, उसी अवस्था को यहाँ 'अवगाहि' कह कर अभिहित किया है। मन की धारणा से ही ध्यान और समाधि होती है।

विमल भई—जब तक समाहितावस्था न आई तब तक बुद्धि में रज और तम का अनुवेध बना ही रहा। सात्विकी बुद्धि भी पूर्ण निर्मल समाधि से ही होती है। कथा प्रारम्भ में वक्ता के समाहित होने का विधान है। यथा—

प्रश्न उमा के सहज सुहाई।
छल विहीन सुनि सिव मन भाई॥
हरहिय राम चरित सब आए।
प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥

श्रीरघुनाथ रूप उर आवा।
परमानंद ।अमित सुख पावा॥

दो०—मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरखित वरनै लीन्ह॥

जब समाधि में बुद्धि निर्मल हो जाती है तो देश काल का आवरण दूर हो जाता है और प्रज्ञालोक से जीते जागते चरित का हृदय में प्रादुर्भाव होता है।

आनन्दउछाहू निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः। रजोगुण और तमोगुण ही अशुद्धि है वही आवरण निक्षेप मल है इनसे रहित होने से स्वभाव से ही प्रकाशमती बुद्धि चमक उठती है। जब निर्विचार समाधि से वैशारद्य होती है—बुद्धि डूबाडूब होती है तब अध्यात्म प्रसाद होता है, भूतार्थ विषय में एकाएक स्पष्ट आलोक होता है आनंद और उत्साह का प्रादुर्भाव होता है। भावार्थ यह कि बुद्धि के निर्मल होने से अतीत राम चरित प्रत्यक्ष हो जाता है, हृदय आनंद और उत्साह से भर उठता है।

भयउ हृदय—हृदय यहाँ शुद्ध मन के उपलक्षण रूप से गृहीत है, इस बात को पहले भी कह आए हैं। इस मनमें रामसीय यश सलिल लबालब भरा था, अब बुद्धि के डूबाडूब होने से आनंद और उत्साह का सोता भी फूट पड़ा।

उमगेउ—भाव यह कि जब स्थान यथेष्ट नहीं होता, और जल अधिक हो जाता है, तो उमग कर बाहर बह चलता है, यहाँ हृदय रूपी अगाध थल, सीयराम यश रूपी जल से भरपूर था, अब सुमति भूम के जल से भलीभांति भीगने से रजतम का आवरण हट गया, हृदय के भीतर आनन्द और उत्साह का सोता भी फूटा, तो वह आनन्द और उत्साह राम यश में मिश्रित होकर उमगा और बाहर बह चला यथा—

बहुत उछाह भवनु अति थोरा।
मानहु उमगि चला चहुँ ओरा॥

यहां गोघाट पशु पंगु अन्धादि के सुभीते के लिए ढालुआ बना है, अतः इधर से ही सीयराम यश रूपी जल उमग कर बाहर चला।

प्रेम प्रमोद प्रवाहू—प्रेम और आनन्द वस्तुतः दो वस्तु नहीं है, आनन्द ही प्रेम का आस्पद है, इसीभाँति प्रमोद और उत्साह भी सर्वथा भिन्न पदार्थ नहीं है। इष्ट भोग को ही प्रमोद कहते हैं, इसीके लिये उत्साह होता है। वही आनन्द और उत्साह रामसीय यश में मिल कर प्रेम प्रमोद रूप में परिणति होकर उमग चला। प्रवाह रूप हो गया।

चली सुभग कविता सरितासो।
रामविमल जस जल भरितासो॥
सरजू नाम सुमंगल मूला।
लोक वेद मत मंजुल कूला॥ ६॥

अर्थ—सो सुन्दर कविता की नदी बह चली, वह राम यश के निर्मल जल से भरी थी। उस सुमङ्गल मूल नदी का नाम है, सरयू, लोक मत और वेद मत उसके दोनों किनारे हैं।

सुभग कविता—अर्थात् वह प्रेम प्रमोद का प्रवाह ही सुन्दर कविता रूप हुआ, सुन्दर कविता यथा—

सरल कविता कीरति विमल सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वयर विसराइ रिपु जोसुनि करहि बखान॥

कविता सरल हो, पर उसमें ऐसा अलौकिक सुख हो, कि शत्रु स्वाभाविक वैर भूल कर प्रशंसा करने लगजाय, तब उसे सुभग कविता कहा जा सकता है।

सरिता चली—भाव यह कि जिस भाँति नदी आप से आप बह चलती है, उस भाँति कविता का प्रवाह बह चला, लिखना कठिन हो गया। यह मधुमती भूमिका का वर्णन हो रहा है, जहाँ पहुँचने पर भारतादि काव्यों की रचना सरल सी बात हो जाती है। उसे फिर गणेश जी से लेखक की आवश्यकता आपड़ती है, जो बोलने के साथ ही लिखता चला जाय। यह सोचने की आवश्यकता नहीं, कि कहां ध्वनि

रखना चाहिये, कहाँ अलंकार रखना चाहिये। नदी जान बूझ कर लहर, भँवर आदि नहीं उठाती वे आपही उठते रहते हैं।

रामविमल जस जल भरिता सो—कह कर इसे महा काव्य कहा। महा काव्य के विषय में साहित्य दर्पणकार लिखते हैं, कि (१) महा काव्य का नायक कोई देवता या सत्कुलोत्पन्न धीरोदात्त गुण युक्त क्षत्रिय होना चाहिये, या बहुत से सत्कुल प्रसूतराजा भी हो सकते हैं, (२) शृंगार वीर और शान्त रसों में से एक अङ्गी और सब रसों को अङ्ग भूत होकर रहना चाहिए, और नाटक की सब सन्धियाँ रहनी चाहिए (३) इतिहास की कोई कथा या किसी सज्जन का वृत्त होना चाहिए (४) उसमें अर्थ धर्म काम और मोक्ष चारों हों, पर फल सब का एक ही हो (५) आरम्भ में उसके वन्दना आशीर्वाद या वस्तु निर्देश रहे (६) कहीं कहीं खलों की निन्दा, और सज्जनों का गुण कीर्तन रहे (७) उसमें ८ से अधिक सर्ग रहें, और वे न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े, और प्रत्येक सर्ग में एक वृत्तमय पद्य हो, और समाप्त उसकी अन्य वृत्ति से हो और सर्गान्त में भावी सर्ग की कथा की सूचना रहे (८) उसमें संध्या सूर्य्य, चन्द्र प्रदोष, अन्धेरा, दिन, प्रातः काल मध्यान्ह, मृगया, शैल, ऋतु, बन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, रण, प्रयाण उपयम, मन्त्र पुत्र, और उदय का साङ्गोपाङ्ग यथा योग्य वर्णन हो, और (९) सर्ग का नाम, कवि के वृत्त, नायक के वृत्त, या सर्ग के उपादेय कथा का सम्बन्धी होना चाहिए। साङ्गोपाङ्ग से जलकेलि मधु-पानादि का ग्रहण है। अब देखना यह है कि ये लक्षण कहाँ तक श्री रामचरितमानस में घटते हैं।

१—श्रीरामचंद्र देवाधिदेव भी हैं, और भौतिक दृष्टि से सत्कुल उत्पन्न क्षत्रिय भी हैं, यथा—

रघुकुल मनि दसरथ के जाए।
ममहित लागि नरेस पठाए॥

ये धीरोदात्त नायक हैं। जो अविकत्थन, क्षमावान्, अति गम्भीर महासत्व निगूढ़ मान और दृढ़व्रत हो उसे धीरोदात्त कहते हैं।

अविकत्थन, यथा—

नाथ सम्भु धनु भंजनि हारा।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥

क्षमावान्, यथा=

गए सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि।

अति गम्भीर, यथा—

सिंधु कोटि सत सम गंभींरा।

महासत्व यथा—

राउ सुनाइ दीन्ह बनवासू।
सुनि मन भएउ न हरष हरांसू॥

निगूढ़ मान, यथा—

भृगुपति बकहिं कुठार उठाए।
मन मुसुकाहिं राम सिरनाए॥

दृढ़ व्रत, यथा—

तुरत बिभीषनु पाछें मेला।
सनमुख राम सहेउ सो सेला॥

२—यह रघुवीर चरित है, अतः इसमें वीर रस प्रधान है। अंगी के रूप में यहाँ वीर रस ही है, शेष रस अङ्गभूत होकर आए हैं। श्रीराम चरित वीर रस से भरा हुआ है कुमारावस्था में ही, मखराखेउ' सब साखि जग जिते असुर संग्राम। युवावस्था में तो प्रतिज्ञा ही कर लिया कि निसिचर हीन करौं महि और विराध कवंध खरदूषण रावणादि वध कर के प्रतिज्ञा पूरी भी कर दी। इसी भाति वर्णन तो सभी रसों का हैं पर प्रधानता वीर की ही है।

नाटक में पाँच सन्धियाँ होती हैं—(१) मुख (२) प्रति मुख (३) गर्भ (४) विमर्श और (५) निर्वहण। सो श्रीरामचरितमानस में पाँचो सन्धियाँ भी हैं।

`मा० प्र० ४—५

जहाँ अनेक अर्थ और अनेक कर्मों के व्यञ्जक बीज की प्रारम्भ नामक दशा के साथ संयोग से उत्पत्ति हो उसे मुखसन्धि कहते हैं यथा—बालकाण्ड में

'अतिशय देखि धर्म कै ग्लानी।
परम सभीत धरा अकुलानी'॥

से लेकर

'गिरि कानन जहँ तहँ भरि पूरी।
रहे निज निज अनीक रचि रूरी॥'

तक मुख सन्धि है।

मुख संधि से निवेशित फल प्रधान उपाय का कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य उद्भेद जहाँ हो, उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं, यथा—बालकाण्ड के

'अवध पुरी रघुकुल मनिराऊ।
वेद विदित तेहि दशरथ नाऊ॥'

से अयोध्याकाण्ड के

कहेउ राम बन गमन सुहावा।

तक प्रतिमुख सन्धि है।

पूर्व संधियों में कुछ प्रगट फल प्रधान उपाय का जहाँ ह्रास और अन्वेषण से युक्त बार बार विकाश हो, उसे गर्भ संधि कहते हैं, यथा—अयोध्या काण्ड के

'सुनहु सुमंत्र अवधि जिमि आवा'

से लेकर आरण्य काण्ड के

'लछमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह॥'

गर्भ संधि है।

जहाँ मुख्य फल का उपाय गर्भ संधि की अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो, किंतु शापादि के कारण अन्तराय युक्त हो उसे विमर्श संधि कहते हैं, यथा—आरण्यकाण्ड के 'नाक कान बिनु भई बिकरारा' से लेकर

लङ्काकाण्ड के 'समाचार पुनि सब कहे गढ के बालि कुमार' तक विमर्श संधि है।

बीज से युक्त मुखादि संधियों में बिखरे हुए अर्थों का जहाँ एक प्रधान प्रयोजन में यथावत् समन्वय साधित किया जाय उसे निर्वहण संधि कहते हैं यथा—लङ्का काण्ड में

रिपु के समाचार जब पाए।

'राम सचिव सब निकट बोलाए' से लेकर 'शोभा सिंधु हृदय धरि गए जहाँ विधिधाम' तक निर्वहण संधि है।

३—महाभारत के बन पर्व में श्रीराम कथा है, श्रीरामायण में तो आदि से अन्त तक राम कथा ही है, पुराण तो कोई भी ऐसा नहीं है, जिसमें राम कथा न हो, यहाँ तक कि आधुनिक विदेशियों के लिखे हुए इतिहासों में भी श्रीराम कथा का उल्लेख है। श्रीराम जी की सज्जनता के विषय में तो कुछ कहना नहीं है—

सबु कोउ कहइ राम सुठि साधू

४—श्रीरामचरितमानस में धर्मार्थ, काम, मोक्ष का वर्णन है, जिसका सविस्तर उल्लेख, 'अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान विचारी' इस अर्धाली की व्याख्या में किया जा चुका है इन सब का एकही फल कहते हुए ग्रंथकार कहते हैं—

नाना कर्म धर्म व्रत दाना।
संजम दम जप तप मख नाना॥
भूत दया द्विज गुरु सेवकाई।
विद्या विनय विवेक बड़ाई॥
जंहं लगि साधन वेद बखानी।
सब कर फल हरि भगति भवानी॥

५—आरम्भ में गोस्वामीजी ने देवताओं की समष्टि की, कवि-समाज की, और समाज सहित श्रीरामचंद्र की वंदना की है, यथा—

देव वंदना—वर्णानामर्थं संघानां रसानां छंद-सामपि। मङ्गलानाञ्च कर्तारौवन्दे वाणी विनायकौ इत्यादि।

समष्टि वन्दना—

जड़ चेतन जगजीव जत सकल राम मय जानि।
वंदौ सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

कविसमाज वंदना—

व्यासआदि कविपुंगव नाना।
जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना॥
चरन कमल बन्दौं तिन्ह केरे।

समाज सहित राम बन्दना—वंदौं अवधपुरी अतिपावनि, आदि।

६—सज्जनों की बन्दना में उनका गुणकीर्तन किया गया है, नारद जी को उपदेश देते हुए श्रीरामजी से सज्जनों की महिमा कहलाया है, यथा—

सुजन समाज सकल गुन खानी।
करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥ इत्यादि

तथा—

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ।
जिन्हतें मैं उनके बस रहऊँ॥ इत्यादि

खलों की बंदना करते हुए उनके गुणों का वर्णन किया है, भरतजी के प्रश्न का उत्तर देते हुए भी श्रीरामजी से खलों की निंदा करवाया है।

यथा—

बहुरि वंदि खलगन सति भायें।
जे बिनु काज दाहिने बायें॥

तथा—

सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ।
भूलेहु संगत करिअ न काऊ॥ इत्यादि।

७—यद्यपि श्रीरामचरितमानस में बड़े सुभीते के साथ अष्टाधिक सर्ग हो सकते थे, तथापि रामायण परम्परा का अनुसरण करते हुए, कविने उसमें सातही काण्ड माने हैं जिनमें बालकाण्ड सब से बड़ा और किष्किधा सबसे छोटा है, अत्यन्त बड़ा या अत्यन्त छोटा कोई भी नहीं है। पूरा रामचरितमानस चौपाई छन्दों में कहा गया है। इसीलिये कुछ लोग इसे चौपाई रामायण भी कहते हैं। पर काण्ड की समाप्ति छंद, सोरठा, दोहा या श्लोक से किया गया है। काण्ड के अन्त में भावीकाण्ड का सूत्रपात भी है।

८—संध्या वर्णन, यथा---

प्रभुहि मिलन आई जनु राती।
देखि भानु जनु मन सकुचानी।
तदपि बनी संध्या अनुमानी॥
अगर धूप जनु बहु अंधियारी॥
उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी।
मंदिर मनि समूह जनु तारा॥
नृप गृह कलस सो इंदु उदारा।
भवन वेद धुनि अति मृदुबानी।
जनु खग मुखरसमय जनुसानी॥

सूर्य्य वर्णन—

रविमंडल देखत लघु लागा।
उदय तासु त्रिभुवन तम भागा॥

तथा—

जब ते राम प्रताप खगेशा।
उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकाश रहेउ तिहुँ लोका।
बहु तेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥
जिन्हहि सोक तेहि कहौ बखानी।
प्रथम अविद्या निसा नसानी॥

अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने।
काम क्रोध कौरव सकुचाने॥
मत्सर मान मोह मद चोरा।
इन्ह कर हुनर न कवनिहु ओरा॥
धरम तडाग ज्ञान विज्ञाना।
ए पंकज बिकसे विधि नाना॥

चन्द्र वर्णन—

पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी।
परम प्रताप तेज बल रासी॥
मत्त नाग तम कुम्भ विदारी।
ससि केसरी गगन बनचारी॥
विथुरे नभ मुक्ता हल तारा।
निसि सुंदरी केर सिंगारा॥

प्रदोष वर्णन—

नारि कुमुदिनी अवधसर रघुपति विरह दिनेस।
अस्तभए विगसत भईं निरखि रामराकेश॥
जातु धान प्रदोष बल पाई।
धाए करि दस सीस दोहाई॥

ध्वान्त वर्णन—

निस तम घन खद्योत विराजा।
जनु दंभिन कर मिला समाजा॥

दिन वर्णन—

कबहुं दिवस महुँ निविड़ तम कबहुंक प्रगट पतंग।
विनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

प्रातः काल वर्णन—

नृप सब नखत करहिं उजियारी।
टारि न सकहिं चाप तम भारी॥

उगैउ भानु बिनु श्रम तम नासा ।
दुरे नखत जग तेज प्रकासा ॥
कमल कोक मधुकरखग नाना ।
हरषे सकल निसा अवसाना ॥

मध्यान्ह—

मध्य दिवस अति सीत न घामा ।
पावन काल लोक विश्रामा ॥

मृगया—

चढ़िवर बाजि बार एक राजा ।
मृगया कर सब साजि समाजा ॥
विन्ध्याचल गभीर बन गएऊ ।
मृग पुनीत बहु मारत भएउ ॥

शैल—

शैल सुहावन कानन चारू ।
करि केहरि मृग विहंग विहारू ॥

ऋतु-बसन्त—

देखहुं तात बसंत सुहावा ।
प्रियाहीन मोहि भय उपजावा ॥ इत्यादि

(ग्रीष्म)—

बागन्ह विटप वेलि कुम्हिलाहीं ।
सरित सरोवर देखि न जाहीं ॥

(पावस)

वरषा काल मेघ नभ छाए ॥
गरजत लागत परम सुहाए ॥

(शरद)—

वरषा विगत सरद ऋतु आई ।
लछिमन देखहुं परम सुहाई ॥ इत्यादि

(हेमन्त)—

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा।
होइ हिमि तिन्हहि दहै सुख मंदा॥

(शिशिर)—

पुनि ममताजवास बहुताई।
पलुहइ नारि सिसिर ऋतु पाई॥
शिशिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।

बन बर्णन—

तहाँ जाइ देखी बन शोभा।
गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए।
खग मृग बृंद देखि मन भाए॥

सागर वर्णन—

केहि विधि तरिअ जलधि गंभीरा।
संकुल मकर उरगँ भक जाती।
अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥

सम्भोगः—

एक वार चुनि कुसुम सुहाए।
निज कर भूषन राम वनाए॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। इत्यादि

विप्रलम्भ—

कहेउ राम वियोग तव सीता।
मोकहुँ सकल भए विपरीता॥ इत्यादि

रण प्रयाण—केहरि नाद भालु कपि करहीं।
डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे इत्यादि।

उपयम——कुअंर कुअँरि कल भाँवरि देहीं।
नयन लाभ सब सादर लेहीं॥ इत्यादि

मन्त्र—मंत्र परम लघु जासु बस विधि हरि हरसुर सर्व ।
महा मत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्व ॥
पुत्र—सुनि शिशु रुदन परम प्रिय बानी ।
संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
उदय—उदित उदयगिरि मंचपर रघुवर बाल पतंग ।
विकसे सन्त सरोज सर्व हरषे लोचन भृङ्ग ॥
साङ्गोपाङ्ग—(जलकेलि)
करहिं गान बहु तान तरंगा ।
बहु विधि क्रीडहि पानि पतंगा ॥
जल पच्छियों के साथ खेल करना अप्सराओं की जल क्रीड़ा है ।
(मधुपान) जाहिं सनेह सुरा सब छाके ।
सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं ।
विहवल वचन प्रेम बस बोलहिं ॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना । इत्यादि

६—नायक के वृत्त के अनुसार बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड नाम रक्खे गये हैं, और शेष काण्डों के नाम कथावृत्त के अनुसार हैं ।

अतः यह महाकाव्य रूपी सरिता राम यश रूपी जल से भरी है, यह महा काव्य रूपी नदी आप से आप नदी की भाँति मानस तीर्थ से बह चली, ग्रन्थकार को कुछ करना न पड़ा। मधुमती भूमिका में पहुँचने पर यही गति होती है । यह रचना कवि के व्युत्थान दशा में नहीं हुई, इसी लिए लिट् का प्रयोग दिया, परोक्ष भूत में लिट् होता है, यथा—भाषा बद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम् ।

सरयू नाम—जिस भाँति मानसरोवर से सरयू नदी बहचली, उसी भाँति श्री गोस्वामी जी के रामचरित मानस से महाकाव्य रूपी नदी बह चली, इसका भी नाम सरयू काव्य है । जिस भाँति मानस के जल का प्रचार संसार में वशिष्ठजी ने किया, उसी भाँति श्रीरामचरित मानसोक्त रामसीय यश का प्रचार संसार में इस काव्य के प्रचार द्वारा श्री गोस्वामी जी ने किया ।

सुमङ्गल मूला—जिसभाँति सरयू सरि कलि कलुष नसावनी है, तथा हरिपद दायिनी है, यथा—

'सरजू सरिकलिकलुष नसावनि'
जा मज्जन तें विनहि प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं बासा॥

उसी भाँति यह काव्य सरित भो कलिकलुष नसावनी तथा हरिपद दायिनी है, यथा—

मङ्गल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

तथा—

विमल कथा हरिपद दायिनी॥
भगति होइ सुनि अनपायिनी।

इसलिये मङ्गल मूल कहा—

मंजुल कूला—ताल तो चार घाटों के बीच में होता है, पर नदी तो दोकूलो (तटों) के बीच से बहती है। दक्षिण कूल और वाम कूल, यथा—

दोउ वर कूल कठिन हठधारा।

यद्यपि सरयू नदी अवधपुरी के उत्तर है, पर वह अवध राज्य के भीतर होकर बही है, अतः उसका दोनों तट अवधराज्य में है, अतः 'मज्जुल कूल' कहा।

लोक वेद मत—इसी भाँति यह काव्य सरि भी दो कूलों के बीच से बही है, दक्षिण कूल लोक मत है, और बाम कूल वेद मत है। नदी का बाम कूल अधिक पवित्र होता है, जितने पवित्र तीर्थ हैं, बेद मत तो सर्वोपरि है ही, पर लोकमत की भी मर्य्यादा कम नहीं है, इस काव्य प्रचार में लोक मत और वेद मत साथ ही साथ चलता है, यथा—

तदपिजाइ तुम करहु अब यथा वंस व्यवहारु।
बूझि विप्रकुल वृद्ध गुर वेद विदित आचारु॥
करिकुलरीति वेद बिधि राऊ।
देखि सबहि सबभाँति बनाऊ॥

मिलेजनकु दसरथु अति प्रीती ।
करिलौकिक बैदिक सबरीती ॥
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू ।
दुहुँ कुलगुरु सबकीन्ह अचारू ॥
जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही ।
लोक वेद बिधि सादर कीन्ही ॥
तात भरत तुम्हधरम धुरीना ।
लोक वेदविद प्रेम प्रवीना ॥
करब साधुमत लोकमत नृप नय निगम निचोरि । इत्यादि

नदी पुनीत सुमानसि नन्दनि ।
कलिमलितिन तरुमूल निकंदिनि ॥ ७ ॥

अर्थ—यह पवित्र नदी सुन्दरमानस तीर्थ की कन्या है, कलि के मलरूपी तृण और वृक्षों की जड़ खोदने वाली हैं ।

नदी पुनीत—इस सरयू नदी की धर्म ग्रन्थों में बड़ी महिमा कही गई है । स्वयम् ग्रन्थकार कहते हैं ।

नदी पुनीत अमित महिमा अति ।
कहिन सकै सारदा विमल मति ॥

इसी लिये 'नदी पुनीत' कहा, नदी की पवित्रता इसी में है, कि स्नान करने वालों को पुण्य हो, करने वाले अनायास ही हरिलोक पाते हैं ।

सुमानस नन्दनि—ऐसे सुन्दर मानस की कन्या है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है । अतः यह भी बड़ी सुन्दरी है । वेटी कुछ अंशों में माँ के सदृश होती हैं, और कुछ अंशों में नहीं भी होती, इसी भाँति महाकाव्य सरित भी कुछ अंशों में रामचरित मानस के सदृश भी है, और कुछ अंशों में विशदृश भी है । मानस तीर्थ तो ६० या ७० मील के भीतर ही भीतर चार घाटों से परि वेष्ठित है, परसरयू यद्यपि चारों घाटों के जल से ही भरी है, तथापि यह और नदियों

से भी मिली है, इसका प्रचार कई प्रांतों में है। मानस की गहराई २६४ फीट तक है, पर सरयू की गहराई कदाचित् ही कहीं ३० फीट हो, अतः काव्य-द्वारा जिस कथा का प्रचार कई प्रांतों में हुआ, उसमें मूल की अपेक्षा बहुत कम गहराई होना स्वाभाविक ही है।

पुनः बेटी न कहकर नन्दिनि कहने का तात्पर्य्य यह है कि, यह अपनी माता मानसतीर्थ को आनन्ददायिनी है, क्योंकि इसके द्वारा मानस का यश संसार में फैला हुआ है। नहीं तो मानस के अति दुर्गम होने से, उस तक लोगों की पहुँच होना ही अति कठिन था, अतः अति पुनीत होने पर भी उसकी चर्चा संसार में क्यों कोई करता?

कलिमल तिन तरु—जिस भाँति नदी के दोनों किनारों पर तृण, तरु जमे रहते हैं, उसी भाँति इस सरयू नदी के दोनों किनारे लोकमत और वेदमत में, न जाने कितने तृणरूपी पातक और तरुरूपी महापातक बद्धमूल हो रहे हैं। वेदमत और लोकमत कलिमल से ग्रस्त हैं, यथा—

कलिमल ग्रसे धरम सब लुप्तभये सद्ग्रंथ।
दम्भिन्ह निजमति कलपकरि प्रगट किये बहु पंथ॥
भये लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभकर्म। इत्यादि।

मूल निकन्दिनि—इस महाकाव्य का प्रचार सरयूलोकमत और वेदमत में बद्धमूल कलिप्रभावज पाप और महापाप के मूल को ही बहाती है अर्थात् ये निर्मूल होकर नष्ट हो जाते हैं।

दो०—श्रोता त्रिविध समाज पुर ग्राम नगर दुहु कूल।
संतसभा अनुपम अवध, सकल सुमङ्गल मूल॥२६॥

अर्थ—तीन प्रकार के श्रोताओं का समाज, दोनों किनारों के पुर, ग्राम और नगर हैं, सब मङ्गलों का मूल संतों की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

श्रोता त्रिविध समाज—भाव यह कि जीवन्मुक्तों का समाज, विरक्तों का समाज और विषयियों का समाज, यथा—

सुनहि विमुक्त विरत अरु विषयी।

ये ही तीन प्रकार के श्रोता हैं, रामकथा सभी को प्रिय है, अतः ये लोग नित्य के सुनने वाले हैं, यथा—

जीवनमुक्त महामुनि जेऊ।
हरिगुन सुनहिं निरन्तर तेऊ॥
भवसागर चह पार जो पावा।
रामकथा ता कहँ दृढ़ नावा॥
विषयिन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा।
श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥

पुर, ग्राम नगर दुहु कूल—जिस भाँति सरयू नदी के दोनों किनारों पर, पुरवा, गाँव और नगर बसे हुए हैं, इसी भाँति इसी कविता सरिता के लोकमत और वेदमतरूपी दोनों किनारों पर जीवन्मुक्त विरक्त और विषयी श्रोताओं के समाज है।

मानस के अवगाहन करनेवाले तो विरले ही हैं यथा—

सदा सुनहिं सादर नर नारी।
तेइ सुर वर मानस अधिकारी॥

पर कविता सरिता के श्रोताओं का तो समाज का समाज हो गया है, तटवासी को ही सदा अवगाहन का सौभाग्य प्राप्त है, अतः उनसे नित्य के श्रोताओं को उपमित किया है। कोई श्रोता इस काव्य से लौकिक शिक्षा ग्रहण करते हैं और कोइ वैदिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। दोनों प्रकार के श्रोता होने से उन्हें यथाक्रम दोनों किनारों का निवासी कहा। तामस, राजस और सात्विक भेद से भी श्रोतासमाज का भेद हुआ।

संतसभा अनुपम अवध—अवध नगर सरयू के किनारे है। नगर होने पर भी यह बड़ा भारी तीर्थ है, यथा—

मम धामदा पुरी सुखरासी।

अतः इसका पृथक् निर्देश किया। इसी भाँति जीवन्मुक्तों में भी भक्तों का बड़ा आदर है, यथा—

सबतें सो दुर्लभ सुर राया।
राम भगति रत गत मद माया॥

अतः सन्तसमाज की उपमा अवध से दी। संतसभा भी अनुपम है, यथा—

विधिहरिहर कवि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥

अवध भी अनुपम है, यथा—

अवध प्रभाव जान तब प्रानी।
जब उर बसहिं राम धनुपानी॥
राम भगति सुरसरितहिं जाई।
मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जस पावन।
मिलेउ महानद सोन सोहावन॥

अर्थ—सुकीर्तिरूपी सरयू जाकर रामभक्ति रूपी गङ्गा से मिली, और छोटे भाई के सहित राम जी का समरयश महानद सोनरूप होकर जा मिला।

राम भगति सुरसरितहि—रामभक्ति को पहले भी गङ्गा कह आये हैं, यथा—

राम भगति जहँ सुरसरि धारा।

रामभक्ति को गङ्गा कहने का कारण यह है, कि जिस भाँति गङ्गा जी पापों का हरण करती हैं, उसी भाँति भक्ति भी अभ्यन्तर मल को दूर करती है, यथा—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई।
अभि अन्तर मल कबहुँ न जाई॥

गङ्गा गिरिराजसम्भूत है, और भक्ति पुरारी गिरि सम्भूत है, गङ्गा महार्णव में जा मिली हैं, और भक्ति श्री रामार्णव में जा मिली हैं, गङ्गा को राजर्षि भगीरथ सगरसुतों के तारने के लिये लाये, और भक्ति को देवर्षि नारद जगत के सन्तरण के लिये लाये, (नारदभक्तिसूत्र द्रष्टव्य है)।

सुकीरति सरजु सोहाई—श्री राम-सुकीर्तिपूर्ण इस काव्य को सरयू कहा। सरयू मानस से निकली और यह कवितासरिता श्रीरामचरित-मानस से निकली है। सरयू के लिए कहा है कि,—

जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा।
मम समीप नर पावहिं बासा॥

इसी भाँति इस काव्य के लिए भी कहा गया है कि,—

'रघुबंश भूषनचरित यह
नर कहहि सुनहि जे गावहीं॥
कलि मल मनोमल धोइ
बिनुश्रम राम धाम सिधावहीं,

अतः दोनों को 'सोहाई' कहा।

जाइ मिली—इससे ज्ञात होता है कि गङ्गा की स्थिति सरयू से पहले की है। सरयू भी पुर, ग्राम, नगरों से दोनों ओर संयुक्त होती हुई अवध पहुँची, और वहाँ से भी गङ्गा जी में जा मिलीं, और सरयू नाम छोड़ कर गङ्गा ही हो गईं। इसी भांति कविता सरिता भी अनेक तामस, राजस और सात्विक श्रोतृसमाजों में से होती हुई सन्तसभा में जा पहुँची और वहाँ जाकर भक्ति से मिल गई, अर्थात् यह कविता सरिता भक्ति की प्रापिका है, यथा—

जे एहि कथहिं सनेह समेता।
कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिंरामचरन अनुरागी।
कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

सानुज राम समर जस—यहाँ अनुज शब्द से लक्ष्मण जी का ग्रहण है। जब विश्वामित्र महर्षि अनुजसहित रघुनाथ जी को महाराज दशरथ से मांग कर, यज्ञरक्षा के लिए सिद्धाश्रम ले गए, और यहाँ बड़ी भारी निशाचरी सेना से जो कि सुबाहु मारीच के सेनापतित्व में आई थी, दोनों भाइयों का युद्ध हुआ। श्री रामजी ने सुबाहु को मारा,

और मारीच को समुद्रपार फेंक दिया। तब तक श्री लक्ष्मणजी ने उस महती निशाचरी सेना का संहार कर दिया। स्वयम् महर्षि विश्वामित्रजी कहते हैं—

रामलषन दोउ बंधुवर, रुप शील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखिजग, जिते असुरसंग्राम॥

पावन—बड़ा भारी पुण्य यश है, इसलिये पावन कहा, यथा—"पावन जस कि पुन्य बिनु होई" इस समर में कहने के लिये भी कोई स्वार्थ नहीं था। ऋषि जी की यज्ञरक्षा के लिये, ऐसी छोटी उमर में राक्षसों से लड़ गये और उनका बध किया। अतः इस पावन यश का पृथक् ही वर्णन करते हैं।

महानद सोन—वीरता के पावन यश को, अति उदात्त होने से, नदी न कह कर महानद शोण से उपमित करते हैं। शोण महानद दक्षिण ऋक्षवान् से आकर गङ्गा जी से मिला है इसी भांति यह पावन समरयश भी दक्षिण सिद्धाश्रम से आकर रामभक्ति के अन्तर्गत हो गया। अतः दोनों भाइयों के पावन यश को महानद शोण कहा।

जब सरयूकाव्य रामसुयश से भरा हुआ आकर भक्ति भागीरथी से मिल ही चुका था, फिर समरयश को उससे अत्यन्त पृथक् करके शोण से उपमित करने का कारण यह है, कि इससे वैरभाव से भजन करने वालों की (निशाचरों की) कथा है। इसका भी मेल रामभक्ति से हुआ, पर यह उस रामयश से एक दम पृथक् है, जिससे प्रेम से भजन करनेवालों को आनन्द ही आनन्द है, और बैर से भजन करनेवालों को यावज्जीवन प्रेम का आनन्द नहीं होता बल्कि द्वेष से जला करते हैं, अतः दोनों को अलग अलग कहना पड़ा।

सोहावन—अन्य ऋतुओं में शोण महानद जिसे हिरण्यवाह भी कहते हैं, साधारण नदियों की भाँति स्वल्प जलवाला और सुगमता से पार करने योग्य मालूम पड़ता है, पर वर्षा ऋतु आते ही उसका स्वरूप दूसरा हो जाता है, और वह सागर की भांति दुर्लङ्घ्य मालूम पड़ता।

है। इसी भांति निशाचरों से रारि होने पर श्रीराम जी का सौम्य यश अति प्रखर रूप धारण करता है। श्री लक्ष्मण जी कहते हैं—

'समुझि परिहि सोउ आज विसेखी।
समर सरोष राम मुख पेखी॥

अतः सोहावन कहा, अथवा रामजी के समर में लोककण्टकों का वध होता है, अतः समरयश सभी को सोहावन है।

मिलेउ—जहां पर सरयू का सङ्गम गङ्गा जी से हुआ है, वहीं शोण का संगम नहीं है, शोण का सङ्गम गङ्गासरयू-सङ्गम से पूर्व की ओर कुछ हट कर है, अतः शोण का मिलना उसके बाद लिखते हैं। जिस भांति रामसुयश भक्ति में मिलाथा, उसी भांति सानुज राम का पावन समरयश भी भक्ति में मिल गया। कौशल और विदेह की सीमा गण्डकी नदी है, अतः शोणसङ्गम तक अवधराज्य ही है। श्री गोस्वामी जी ने इसके आगे रूपक नहीं बढ़ने दिया, क्योंकि इसके आगे बोली बदल जाती है।

जुग बिच भगति देव धुनि धारा।
सोहत सहित सुविरति विचारा॥
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी।
राम सरूप सिंधु समुहानी॥

अर्थ—दोनों के बीच में गङ्गा जी की धारा और विचार के साथ शोभित है, इस भांति तीनों तापों का भयभीत करनेवाली तिमुहानी रामस्वरूप रूपी सिन्धु की ओर अग्रसर हुई।

भगति देव धुनि धारा—अन्य पुण्य नदियों की भांति सभी साधनों का महत्व एक से एक अधिक है, पर देवनदी गङ्गा की भांति भक्ति ही है। जिस भांति सर्वतीर्थमयी गङ्गा हैं, उसी भांति सर्व साधन-मयी भक्ति है, यथा—

सब कर फल हरि भगति सुहाई।

भक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न होना चाहिए, इस लिये "धारा" कहा।

सहित सुविरति विचारा--यहां कार्य्य से कारण का ग्रहण किया। 'विरति' कहने से कर्मकाण्ड कहा, यथा—

धर्म तें विरति योग ते ज्ञाना।

और विचार से ब्रह्मविचार का ग्रहण किया। साधुसमाजरूपी जंगम प्रयाग में जाकर भक्ति, कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्ड (ब्रह्म विचारों) से योग हो जाता है। ब्रह्मविचार का सरस्वती की भांति अन्तः प्रवाह रहता है, और कर्म तथा भक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है, यथा--

मुद मङ्गल मय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधिनिषेध मय कलि मल हरनी।
करम कथा रविनंदनि करनी॥

प्रयागराज से होती हुई गङ्गा जी जब बहुत आगे बढ़ जाती हैं, तब जाकर सरयू का सङ्गम होता है, अतः यहां भक्ति गङ्गा का विरतियमुना और ब्रह्मविचार सरस्वती के साथ वर्णन करना पूर्णतः उपयुक्त है।

जुगबिच सोहती—एक ओर तो उत्तर से दक्षिण बहती हुई सरयू आईं, दूसरी ओर दक्षिण से उत्तर बहता हुआ महानद शोण आया। बीच में यमुना और सरस्वती से मिली हुई गङ्गा जी के पश्चिम से पूर्व के प्रवाह की अद्भुत शोभा है। इसी भांति एक ओर से माधुर्य्य-गुणयुक्त रामसुयश बह रहा है, दूसरी ओर से ऐश्वर्य्यगुणयुक्त समरयश का प्रवाह आ रहा है, बीच में वैराग्य और ब्रह्मविचार के साथ भक्ति की अविछिन्न धारा की अद्भुत शोभा है।

तिमुहानी—जैसे कोई राजमार्ग पश्चिम से पूर्व को जा रहा हो, उसमें एक मार्ग उत्तर से आकर मिल जाय, और एक दक्षिण से आकर मिल जाय तो उन सङ्गमों के बीच के स्थल को तिमोहानी कहते हैं। इसी भांति माधुर्य्य गुणों के अनुध्यान से भी भक्ति की प्राप्ति होती है, तथा ऐश्वर्य्य गुणों के अनुध्यान से भी भक्ति की ही प्राप्ति होती है,

अतः रामसुयश, तथा 'सानुज रामसमरयश' दोनों का भक्तिरूपी राजपथ में ही मिलना कहा। माधुर्य्य और ऐश्वर्य्य और ऐश्वर्य्य का विराग विचारयुक्त भक्ति में मिल जाने से यहाँ भी तिमुहानी हो गई।

त्रिविध ताप त्रासक— त्रिविध ताप अर्थात् दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। वज्रपातादि आधिदैविक ताप हैं, और ज्वरादि दैहिक ताप हैं। ये भगवान् के माधुर्य्य और ऐश्वर्य्य के यश का ज्ञान् वैराग्ययुक्त भक्ति के साथ अद्भुत योग देखकर भाग जाते हैं। ऐश्वर्य्ययश को देखकर दैविक ताप भागते हैं और ज्ञान वैराग्ययुक्त भक्ति को देखकर दैहिक ताप भागते हैं। ऐश्वर्य्य-ख्यापन करने वाला यश ही आधिदैविक अर्थ है माधुर्य्य-ख्यापन करने वाला भौतिक अर्थ है ज्ञान वैराग्ययुक्ता भक्ति-ख्यापन करने वाला आध्यात्मिक अर्थ है, इसका सविस्तर निरूपण 'अर्थ अनूप सुभाव सुभाषा' प्रसङ्ग में किया जा चुका है।

समुहानी—यमुना और सरस्वती को अपने में मिलाये हुए गङ्गाजी, सरयू और शोण के जल को लेती हुई समुद्र की ओर चलीं। इन्हीं का अनुगमन करने से गङ्गासागर की प्राप्ति होती है अर्थात् उपर्युक्त सुरसरि की धार का आश्रयण करने से राम स्वरूप सिन्धु की प्राप्ति होती है। इसीको कल्याणवहा चित्तनदी कहते हैं। यथा—

रघुवंसभूषन चरित यह,
जे नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ,
बिनुश्रम रामधाम सिधावहीं॥

यहाँपर श्री गोस्वामीजी ने हिन्दी संसार की सीमा भी दिखला दी। हिन्दी भाषाभाषी संसार के पश्चिम की सीमा यमुना नदी है, पूर्व की सीमा गङ्गाशोणसङ्गम है। उत्तर की सीमा सरयूनदी और दक्षिण की सीमा शोण हैं। इन्हीं प्रान्तों में हिन्दी बोली जाती है। अतः इतने में ही श्रीगोस्वामीजी ने अपने काव्य का रूपक बाँधा है।

मानस मूल मिली सुरसरिही।
सुनत सुजन मन पावन करही॥

बिच-बिच कथा विचित्र विभागा।
जनु सरि तीर तीर वनवागा ॥ ३ ॥

अर्थ—इस सरयूरूपी कवितासरिता का मूल मानस है, और यह श्रीराम भक्तिरूपी गङ्गा से जा मिली है, अतः यह कान में पड़ते ही सुजन मन को पवित्र कर देती है। बीच-बीच में जो कथाओं के विचित्र विभाग हैं, वेही नदीतट के वन और बाग हैं।

मानसमूल—भाव यह है कि मानसरोवर सा पवित्र तीर्थ जिसका उद्गम स्थान है, ऐसी पावन सरयू नदी हैं। इसी भाँति उस सरयू काव्य का भी उद्भवस्थान श्रीरामचरितमानस है, अतः यह अत्यन्त पावन है। यहाँ मानस शब्द श्लिष्ट है आरोप्यमाण के पक्ष से इसका अर्थ मानसरोवर होता है, और आरोप के विषय के पक्ष में श्रीरामचरित मानस अर्थ है, तात्पर्य यह कि जिसका पुण्य मूल है, वह वस्तु भी पुण्यमय हैं, श्रीरामचरितमानस के पुण्यमय होने से यह कविता भी पुण्यमय हुई।

मिली सुरसरिही—मूल तो पावन था ही, तिसपर त्रैलोक्यपावन गङ्गा से उसका संगम हो गया, अतः पुण्य की पराकाष्ठा हो गई, क्योंकि गङ्गा ब्रह्मद्रवा है, यथा—मुदित ब्रह्ममय वारि निहारी। इसी भाँति इस सरयू-काव्य का भी पर्यवसान भक्ति में हुआ। श्रीरामचरितमानस से यह प्रादुर्भूत हुआ और भक्ति में सम्मिलित हो गया, अतः यह भी कल्याण की अवधि तक पहुँच गया, क्योंकि भक्ति से अधिक कल्याण बड़ा और क्या है, यथा—

पुनि रघुवीरहिं भगति पियारी।
माया खलु नर्त्तकी विचारी ॥

सुनत—एक तो श्रीरामचरितमानस से इसकी उत्पत्ति, दूसरे श्रीरामभक्ति में इसका पर्यवसान, अतः इस काव्य की ऐसी महिमा हुई कि इसके श्रवणमात्र से महाफल होता है। भाव यह कि मनन निदिध्यासन यदि किया जाय तो कहना ही क्या है, यहाँ केवल श्रवणगोचर

होने का माहात्म्य कहते हैं। जिस भाँति बिना प्रेम नेम के ही मज्जन करने से भी सरयूस्नान का महाफल है, उसी भाँति इस काव्य के बिना मनन निदिध्यासन के भी श्रवणमात्र का महाफल है।

सुजन मन— श्रीगोस्वामीजी के दो श्रोता हैं—एक सुजन और दूसरा मन। इन्हीं दो को सम्बोधन करके गोस्वामीजी कथा कहते हैं। सुजन, यथा—सुनहु सकल सज्जन सुखमानी, इत्यादि। मन, यथा—

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु विचार।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥
दीपसिखा सम युवतितन मन जनि होसि पतंग।

इत्यादि। अतः 'सुजन-मन' कहने से सुजन और मन दोनों का ग्रहण है। अथवा सुजन का मन भी अर्थ हो सकता है।

पावन करही—सुनते ही (कान में पड़ते ही) सुजन को पावन करती है। पवित्र पुरुष को ही सुजन कहते हैं, अतः उनके पवित्र करने का भाव यह है कि उनका भवबन्धन छूट जाता है, यथा—

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा।
सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा॥

मन को पावन करती है, यथा—

राम कथा गिरिजा मैं बरनी।
कलिमल समनि मनोमल हरनी॥

बिच-बिच—यहां वीप्सा से बहुत्व का सूचन किया। श्रीरामकथा चल रही है, बीच-बीच में ऐसी कथाएँ भी आ पड़ीं जिन्हें रामकथा नहीं कह सकते पर वे रामकथा से सम्बद्ध हैं, यथा—पार्वती-जन्म, पार्वतीजी की तपस्या, नारदमोह, भानुप्रताप की कथा इत्यादि। इन कथाओं को सद्यः रामकथा नहीं कह सकते, पर इनका सम्बन्ध रामकथा से अवश्य है। असम्बद्ध कथा इस काव्य में है ही नहीं।

कथा विचित्र विभागा—इन कथाओं का विभाग एकसा नहीं है, इसलिये विचित्र कहा। सती मरत हरिसन वर माँगा। जनम-जनम शिव पद अनुरागा' इसलिये सती का पर्वतराज के गृह जन्म हुआ

और उन्होंने सर्वज्ञ नारद के उपदेश से तपस्या किया। नारदमोह की कथा इससे बिलकुल नहीं मिलती। नारदजी को कामजय का अभिमान हुआ, अतः भगवान् से प्रेरित मायामयी मूर्ति विश्वमोहिनी पर वे मोहित हो गये। भानुप्रताप की कथा इन दोनों से विलक्षण है, कपटी-मुनि पर श्रद्धा करने से मारे पड़े। अतः विचित्र विभाग कहा—

जनु सर तीर तीर—सरयू नदी जो मानस से निकल कर बहती हुई गङ्गाजी से आ मिली है, उसके दोनों तटों पर केवल पुर, ग्राम, नगर ही नहीं बसे हैं, किन्तु बहुत बड़े बड़े वन और बाग भी लगे हुए मिलते हैं, एवम् इस सरयूकाव्य के दोनों तटों के श्रोताओं को अधिकारानुसार पुर ग्राम और नगर स्थानीय कह आये हैं, पर इस कविता-सरिता से केवल नर-समाज ही सम्बद्ध नहीं है, अनेक प्रकार की अन्य विचित्र कथाएँ भी सम्बद्ध हैं, जिनकी उपमा तीर के वनबागों से दी गई है।

वनबागा—वन में बड़े-बड़े दुःख होते हैं, भय होता है, विषाद होता है, परिताप होता है यथा—

वन दुख नाथ कहे बहुतेरे।
भय विषाद परिताप घनेरे॥

अतः दुःखवाली कथाएँ वन हैं, यथा—सती मोह, नारदमोह तथा भानुप्रतापादि की कथाएँ।

भय यथा—

सती सभीत महेश पहँ चली हृदय बड़ सोच।

विषाद, यथा—

पति परित्याग हृदय दुख, भारी।

परिताप, यथा—

पाछिल दुख न हृदय अस व्यापा।
जस यह भयउ महा परितापा॥

इसीभांति इस प्रकार की अन्य कथाओं में देख लेना चाहिए। यह बात भी स्मरण रहे कि सती नारद भानुप्रताप सभी अपना रास्ता

भूल गए। इसलिये भी इन कथाओं को वन कहा। बाग में सुख होता है, यथा—

वागु तड़ागु विलोकि प्रभु हरषे बन्धु समेत।

अतः पार्वती जन्म, तपस्या, स्वायम्भूमनु आदि की कथा को बाग कहा, क्योंकि इनमें सुख ही सुख हुआ।

उमा महेश विवाह बराती।
ते जलचर अगनित बहु भांती॥
रघुवर जनम अनन्द बधाई।
भँवर तरंग मनोहरताई।४॥

अर्थ—उमा महेश के विवाह के बराती ही इस नदी के अनेक प्रकार के असंख्य जलजीव हैं, और श्रीरामजी के जन्म की बधाइयाँ ही भँवर और तरंग की मनोहरता है।

उमामहेशविवाह—जिसके देखने के लिए देवतगण लालायित रहते हैं। देवताओं की आयु एक मन्वन्तर की होती है, अतः प्रत्येक मन्वन्तर के देवताओं को उमामहेश्वर के विवाहोत्सव दर्शन करने का सौभाग्य नहीं होता, अतः इस विवाह के देखने की सब देवताओं को बड़ी अभिलाषा है इसी लिये ब्रह्मदेव कहते हैं कि—

सकल सुरन्ह के हृदय अस, शङ्कर परम उछाह।
निज नयनन्हि देखा चहहिं नाथ तुम्हार विवाह॥
यह उत्सव देखिअ भरि लोचन।
सो कछु करहु मदन-मद-मोचन॥

बराती—अतः देवतामात्र बारात में गए यथा—

लगे सँवारन सकल सुर, वाहन विविध विमान।

इधर परम पाशुपत विष्णुभगवान् ने देखा कि रुद्रगण लोग तो विवाहोत्सव के सुख से वञ्चित ही रह जाया चाहते हैं, अतः उन्होंने दिक्पालों को आज्ञा दी कि सब लोग अपनी २ सेना लेकर अलग हो जाओ, क्योंकि वर के 'अनुहारि' बरात है नहीं, दूसरे के यहाँ इनके संग

जाकर अपनी हँसी कराना है। सो विष्णु की आज्ञा से देवता लोग अपनी अपनी सेना के साथ अलग हो गए तब शङ्करभगवान् ने अपने सब गणों को बुला भेजा इसमें यक्षराक्षस प्रेत और भूतों का समूह था, यथा—

अति प्रिय बचन सुनत हरिकेरे।
भृङ्गिहि प्रेरि सकल गन टेरे॥
सिव अनुसासन सनि सब आए।
प्रभु पद जलज सीस तिन्ह नाए।
नाना वाहन नाना वेखा।
विहँसे सिव समाज निज देखा॥
कोउ मुखहीन विपुल मुख काहू।
बिनु पदकर कोउ बहु पद बाहू॥
विपुल नयन कोउ नयन विहीना।
हृष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना॥
संग भूतप्रेत पिशाच जोगिनि विकटमुख रजनीचरा।

अतःमहादेवजी के विवाह की बारात इष्टदेवों की ही बारात थी। क्योंकि—

यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः,
प्रेतान् भूतगणांश्चैव यजन्ते तामसा जनाः।

सात्विक लोग देवताओं का यजन करते हैं, राजसिक लोग यक्ष राक्षसों की पूजा करते हैं, और तामसिक लोग भूत प्रेतों की पूजा करते हैं। सो इस बारात में सभी देवता हैं सभी मुख्य मुख्य यक्ष राक्षस भूत और प्रेत हैं। अतः बारात क्या है त्रैलोक्य के लिये इष्ट देवों का समाज है।

ते जलचर—इनकी उपमा चलचरों से दी गई है, क्योंकि—

कोउ मुखहीन विपुलमुख काहू।
बिनु कर पद कोउ बहु पद बाहू॥

यह चौपाई जलचरों से ही घट सकती है, क्योंकि विपुल मुख, बहु सिर बाहु तथा त्रिनुपद-बाहू जलजन्तु ही होते हैं। जलजन्तुओं से उपमा देकर यह भी दिखलाया कि इस कविता सरि में मज्जन करनेवालों को इनसे बच कर रहना चाहिए, नहीं तो ये उदरस्थ कर लेवेंगे। अर्थात् इन्हें इष्टदेव मान लेने से इन्हीं की गति होगी, फिर श्रीरामपद की प्राप्ति न हो सकेगी यथा—

देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि।

तथा—

जे परिहर हरिहर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तिन्हकी गति मोहिं देउ विधि जौं जननी मत मोर॥

अगनित बहुभांती—साढ़े तैंतीस करोड़ तो देवता ही थे फिर कितने राक्षस, कितने भूत प्रेत थे इसका ठिकाना ही क्या था। अतः असंख्य कहा, फिर देवों, राक्षसों और प्रेतों में भी अनेक जाति तथा व्यक्ति-भेद है, अतः अगनित बहुभाँती कहा। इसीभाँति जलचरों में भी अनेक जातियाँ और व्यक्ति-भेद हैं, यथा—

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा।
प्रगट भये सब जलचर बृन्दा॥
मकर नक्र नाना झख व्याला।
सतयोजन तन परम बिसाला॥
तिन्हको ओट न देखिय बारी।
मगन भये हरि रूप निहारी॥

ये सब रामयश में विहार करनेवाले हैं, फिर भी इनका दूर से ही दर्शन सुखद है, पर इनके भजन करने के फेर में न पड़े, नहीं तो श्रीरामभक्ति से दूर आदमी निकल जाता है।

इस सरयूसरि में वे जलचर नहीं हैं, जो श्रीरामचरितमानस में थे। वहाँ तो कहा गया है—

'नवरस जप तप योग विरागा।
ते सब जलचर चारु तड़ागा॥'

यहाँ महादेवजी के विवाह के बराती को जलचर बता रहे हैं। बात यह है कि यश के प्रचार के साथ साथ गूढ़ विषय नहीं चल सकते। सरयू सरि तो श्रीमानस का प्रचारमात्र है। श्रीगोस्वामीजी के पहिले श्रीरामयश का प्रचार इतना अधिक नहीं था। यह तो उनके काव्य श्रीरामचरितमानस के प्रचार का ही प्रभाव है कि श्रीरामकथा के विस्तार से सभी परिचित हो गये हैं, अतः काव्य के प्रचार से जिस भाँति राम-यश का विस्तार होगा उसी भांति उसमें वर्णित गूढ़ विषयों का प्रचार नहीं हो सकता, अतः प्रचाररूपिणी सरयूसरि के रूपक में श्रीरामचरित-मानस में वर्णित अन्य विषयों को छोड़कर केवल कथाभाग से ही काम लिया है।

रघुवरजन्म—जिसके लिये इतना बड़ा समारम्भ हुआ। महाराज दशरथ ग्लानियुत होकर गुरु वशिष्ठ के शरण गए। उन्होंने धैर्य्य बँधाकर, श्रृंगीऋषि को बुलवाया और पुत्रेष्ठियज्ञ करवाया। ऐसे विधि विधान तथा अनुराग के साथ यज्ञ हुआ कि स्वयम् अग्नि भगवान् दिव्य-चरू लेकर प्रकट हुए। उनके आज्ञानुसार वह हवि महारानियों में बांटा गया। तब से महारानी लोग गर्भयुक्ता हुईं। सबके सब रघुवर जन्म की बाट जोह रहे हैं।

सो०—

जोग लग्न ग्रहवार तिथि सकल भये अनुकूल।
चर अरु अचर हरषयुत राम जन्म सुखमूल॥

ऐसे अवसर में श्रीरघुवर का जन्म हुआ।

यथा—

बड़ी वयस विधि भयो दाहिनों सुरगुरु आशीर्वाद।
दशरथ सुकृत सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद।

यहां रघुवर से चारों भाइयों का ग्रहण प्राप्त है।

अनंद बधाई—साधारण गृहस्थ के पुत्रजन्म में आनन्द बधाई होती है। मुहल्ले टोले के लोग सगे सम्बन्धी लोग बधावा लेकर आते हैं, फिर एक चक्रवर्ती महाराजा के वृद्धावस्था में पुत्रजन्म होने पर

कितनी बड़ी अनन्दबधाईं हुईं होगी। श्रीगोस्वामीजी गीतावलि में कहते हैं—

'सदन वेद धुनि करत मधुर मुनि,
बहुबिधि बाज बधाई।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु,
निज निज सम्पदा लुटाई॥'
सजि आरती विचित्र थारे
कर जूथ जूथ वर नारि।
गावत चलीं बधावन लै लै
निज निज कुल अनुहारि॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले
भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राय की
नाचहिं राजदुआर॥
रानिन दिये वसन मनि भूषन
राजा सहनभंडार।
मागध सूत भाट नट जाचक
जहँ तहँ करहि कवार॥ इत्यादि

भँवरतरंग मनोहरताई—नदी जब उमंग कर चलती है तो उसमें भँवर भी पड़ते हैं, तरङ्गें भी उठती हैं। इन भौंर और तरङ्गों से नदी की शोभा और हो जाती है। सो इस कवितासरिता के प्रचार में 'रघुवरजन्म अनंद बधाई' ही भौंर तथा तरङ्ग की मनोहरता है। भौंर में जल ऐसा चक्कर काटता है कि जो उसमें पड़ा उसे तह में लिये चला जाता है, यथा—

आनंद मगन सकल पुरवासी।
दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना।
मानहु ब्रह्मानंद समाना॥
ब्रह्मानन्द मगन सब लोई। इत्यादि।

ये लोग भँवर में पड़ गए।

तरङ्ग में पड़ा हुआ ऊपर ही ऊपर रहता है,

यथा—

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी।
संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी।
कहा बुलाइ बजावहु बाजा।
गुरु वशिष्ठ कहं गयउ हँकारा।
आयेउ द्विजन सहित नृप द्वारा॥
वृन्द वृन्द मिलि चलीं लोगाई।
सहज सिंगार किये उठि धाई॥ इत्यादि—

ये लोग तरङ्ग में पड़े हुए हैं। अतः जन्म अनंद और बँधाई को भौंर और तरङ्ग की मनोहरता कहा।

दोहा—

बालचरित चहुँ बन्धु के बनज विपुल बहुरंग।
नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि विहंग॥४॥

अर्थ—चारों भाइयों के बालचरित ही बहुत से अनेक रङ्गवाले कमल हैं, राजारानी और अन्यान्य पार्श्ववर्तियों के पुण्य ही भ्रमर तथा जल पक्षी हैं।

बालचरित चहुँ बन्धु के—सब चरित्रों में बालचरित्र की बड़ी महिमा है यथा—

बालचरित अति सरल सुहाये।
शारद शेष शम्भु श्रुति गाये॥
जिनकर मन इन सन नहि राता।
ते जन वंचित किये विधाता॥

बालचरित अत्यंत सरल और सुन्दर है। सरस्वती, शेष, शम्भु और वेद इसी चरित्र का गान करते हैं, अतः जिनके मन इस रंग में न

रंगे उन्हें मनुष्य का शरीर देकर ब्रह्मा ने ठग लिया। शरीर तो दिया पर शरीरोचित मन न दिया। महात्माओं ने बालरूप को ही इष्टदेव माना है। यथा—

इष्टदेव मम बालक रामा।

बालकरूप का ही उपदेश देते हैं यथा—

बालकरूप राम कर ध्याना।
कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना॥

भुशुण्डिजी बालचरित के ही रसिक हैं यथा—

तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ।
बालचरित विलोकि हरषाऊं॥
जन्म-महोत्सव देखौं जाई।
वर्ष पाँच तहँ रहौं लोभाई॥
इष्टदेव मम बालक रामा।
सोभा वपुष कोटिसत कामा॥
निज प्रभु वदन निहारि निहारी।
लोचन सकल करौं उरगारी॥
लघु वायस वपु धरि हरि सङ्गा।
देखौं बालचरित बहु रङ्गा॥

लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ सङ्ग उड़ाउँ।
जूठन परै अजिर महँ सो उठाइ कर खाउँ॥

श्रीगोस्वामीजी इसके वर्णन में कहते हैं—

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मनमोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ रहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मनमंदिर में बिहरैं॥

बनज विपुल बहुरंग—यद्यपि नदीमें कमल नहीं होते पर कवियों की नदी भी कुछ अनोखी होती हैं उनकी कल्पित नदी में यदि कमल न

हुए तो उस नदी की शोभा नहीं होती। नदी की कौन कहे कवि-समाज तो समुद्र में भी कमल खिलाते हैं। सम्प्रदायानुकूल ग्रंथकार ने भी कमल का वर्णन किया। सो दो चार कमल नहीं बहुत से कमल हैं और बहुत रंग के कमल हैं। सो कमल चार रंग के होते हैं—श्वेत रक्त, नील और पीत। यहाँ बालचरित की उपमा कमल से है। बाल-चरित भी बहुरंगी होता है। इन चारों भाइयों के बालचरित सात्विक, राजसिक, तामसिक और गुणातीत इस भाँति चार प्रकार के कमल की भाँति हैं।

सात्विक यथा—

तन की द्युतिश्याम सरोरुह लोचन
कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर शोभित धूरि भरे
छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतिया दुतिदामिनि ज्यों
किलकैं कल बाल विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा
तुलसी मन-मंदिर में विहरैं॥

राजसिक, यथा —

किलकत मोहिं धरन जब धावहिं।
चलौं भागि तब पूप देखावहिं॥
आवत निकट हँसहिं प्रभु, भाजत रुदन कराहि।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितै पराहिं॥

तामसिक, यथा—

आजु अनरसे है भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावतहू,
रोवत राम मेरो सो सोच सबही के।
देव पितर ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत
जब परत दृष्टि दुष्ट ती के॥

गुणातीत—

देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन।
बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥
देखी माया सब बिधि गाढ़ी।
अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावै जाही।
देखी भगति जो छोरै ताही ॥

नृपरानी परिजन सुकृत--

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ।
वेद विदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
वरमधुरंधर गुननिधि ज्ञानी।
हृदय भगति मति सारंग पानी ॥

यहाँ नृप शब्द से दशरथ अभिप्रेत हैं, और 'रानी' शब्द से परम पुनीत, पतिव्रता भगवत्परायाणा महारानी कौशिल्यादि का ग्रहण है, यथा—

कौशल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरिपद कमल विनीत ॥

और परिजन से पुण्यराशि सुमन्तादि का ग्रहण है यथा—

हम सम पुण्य पुञ्ज जग थोरे।
जिनहि राम जानत करि मोरे ॥

यहाँ पर ऐसे ही अलौकिक पुण्यराशि महाराज, महारानियों और अमात्यादि के पुण्य का वर्णन करते हैं।

मधुकर बारि बिहँग—चारों भाइयों के बाल चरित कमल के भौंरे तो महाराज और महारानियों के पुण्य हैं। भौंरे कमल को जूठा

कर देते हैं, इसी भाँति महाराज और महारानियों काही पुण्य ऐसा है कि बाल-क्रीडा में निरत चारों सरकारों को गोद में लेकर चूम सकती हैं। परिजन का पुण्य जल पक्षी की भाँति है, ये कमल के साथ विहार कर सकते हैं, पर भौंरों की भाँति रस नहीं ले सकते, अर्थात् ये चारों सरकारों को गोद में उठा सकते हैं और खेला सकते हैं, यथा—

भूमितल भूप के बड़े भाग।
राम लखन रिपुदमन भरत,
सिसु निरखत अति अनुराग।
बाल विभूषन लसत पाय,
मृदु मंजुल अंग विभाग॥
दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि,
रूप करह जनु लाग।
राज मराल विराजत,
विहरत जे सर हृदय तड़ाग॥
ते नृप-अजिर जानु कर धावत,
धरन चटक चल काग।
सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन,
कहैं सुर किन्नर नाग॥
है वरु विहँग विलोकिय बालक,
बसि पुर उपवन बाग।
परिजन सहित राव रानिन्ह,
कियो मज्जन प्रेम प्रयाग॥
तुलसी फल ताको चखो,
मनि मरकत पंकज राग॥

सीयस्वयंवर कथा सुहाई।
सरित सुहावनि सो छवि छाई॥
नदी नाव बटु प्रश्न अनेका।
केवट कुसल उतर सविवेका॥

अर्थ—सीयस्वयंबर की जो सुन्दर कथा है, वही इस सुहावनी नदी में छवि छाई हुई है। अनेक उत्तम उत्तम प्रश्न ही इस नदी के नाव हैं, और विवेक युक्त चारु उत्तर ही चतुर केवट हैं।

सीयस्वयम्बर—उस समारोह को कहते हैं, जिसमें राजकन्या, आये हुए राजाओं में से अपने लिए बर का वरण करती है। स्वयम्बर उसी राजकन्या का होता है, जिसके रूपलावण्यादि गुणों की ख्याति संसार में फैल जाती है, और अनेक राजा उसे ब्याहने के लिए उत्सुक हो उठते हैं, अतः बहुत बड़े विनाशकारी युद्ध के बचाने के लिये यह किया जाता है।

स्वयम्वर दो प्रकार का होता है, एक तो वह जिसमें कोई प्रण रखा जाता है, और उसमें जीतनेवाले को वह राजकन्या वरण करती है, और दूसरे में कोई प्रण नहीं रहता, जिस पर वह मोहित हो उसे वरण करे। श्रीरामचरितमानस में दोनों प्रकार के स्वयम्वरों का उल्लेख है। दूसरे प्रकार का स्वयम्बर राजा शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी का हुआ। जिस पर श्रीनारदजी मोहित हो गए थे। यथा—

सखी संग लै कुंवरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरैं महीप सब, कर-सरोज जयमाल॥

धरि नृपतनु तहं गयउ कृपाला।
कुंवरि हरिषि मेलेउ जयमाला॥
दुलहिन लै गये लच्छिनिवासा।
नृप समाज सब भयउ निरासा॥

पहिले प्रकार का स्वयंवर सीयस्वयम्वर है, यथा—

सोइ पुरारि को दंड कठोरा।
राज-समाज आजु जेइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही।
विनहिं विचार वरै हठि तेही॥

सीताजी के रूप गुणों की ख्याति सम्पूर्ण संसार में फैल गई थी, अतः अनेकानेक राजाओं ने आकर जनकपुर घेर लिया था, बड़ा संग्राम

हुआ। अन्त में महाराज जनक ने सबको परास्त किया। तब महाराज ने धनुष तोड़ने का प्रण रख कर स्वयंवर किया। इसमें तीन लोक के वीर एकत्रित हुए थे, पर किसी का उठाया धनुष न उठा तब श्रीरामजी ने उस धनुष को तोड़ा, और श्रीसीताजीने उनके गले में जयमाल पहनाया, यथा—

तीन लोक महँ जे भटमानी।
सब कै सकति संभु धनुभानी॥
सकै उठाइ सुरासुर मेरू।
सोउ हियहारि गयउ करि फेरू॥
जेइ कौतुक सिव सैल उठावा।
सोउ तेहि सभा पराभव पावा॥

तहाँ राम रघुवंसमनि, सुनिय महामहिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गजु पंकज नाल॥

कथा सुहाई—अन्य स्वयम्वरों की कथाओं से सीयस्वयम्वर में विशेषता है। सीयस्वयम्वर की कथा केवल धनुषभङ्ग की ही कथा नहीं है। श्रीरामजी का अनुज के साथ फूल चुनने के लिये स्वयम्वर से एक दिन पहिले गिरिजाबाग में जाना, और वहीं सखियों के साथ सीताजी का गिरिजापूजन करने जाना, एक दूसरे को देखना और हृदय में अनुराग उत्पन्न होना।

अब फिर रामजी ही द्वारा धनुषभङ्ग इस कथा के आनन्द को इतना बढ़ा देता है, कि श्रोता-वक्ता गद्गद् हो जाते हैं, अतः इस कथा को (सोहाई) कहा।

दूसरी बात यह कि सीयस्वयम्वर वस्तुतः सीताजी की कथा है; क्योंकि उसमें उन्हीं की प्रधानता है। ग्रन्थकार श्रीरामकथा को सुहाई कह आए हैं, यथा—

कहउं कथा सोइ सुखद सुहाई।
सादर सुनहु सुजन मन लाई॥

अब श्रीसीताजी की कथा को 'सुहाई' कहते हैं।

सरित सुहावनि—श्रीमानसरोवर से जो सरयूजी निकलीं, और श्रीगङ्गाजी में मिलीं, उनकी बड़ी शोभा है, यथा—

राम भगति सुरसरितहिं जाई।
मिली सुकीरति सरजु सुहाई।

इसी भाँति श्रीरामचरितमानस से जिस कविता-सरित का प्रचार होता हुआ भक्ति में अवसान हुआ उसकी भी बड़ी शोभा है अतः सुहावनि कहा।

सो छवि छाई—जिस भाँति सरयू में छवि छाई हुई है, उसी भाँति इस कवितासरित् में 'सीयस्वयम्वर' कथा की छवि छाई हुई है, अर्थात् सीयस्वयम्वर-कथा से ही रामयश से भरी हुई इस कविता की शोभा है, यथा—

विश्व विजय जसु जानकि पाई॥
आये भवन व्याहि सब भाई॥

सीयस्वयम्वर की कथा में युगलमूर्ति का छवि वर्णन भरा पड़ा है, बीसों बार 'छवि' शब्द की आवृत्ति है। यहीं की झाँकी में महाछवि शब्द का प्रयोग, हुआ है।

श्रीरामजी के प्रति महाछवि शब्द का प्रयोग, यथा—

पीत यज्ञ उपवीत सुहाए।
नखसिख मंजु महाछवि छाए॥

श्रीसीताजी के प्रति महाछवि का प्रयोग, यथा—

सखिन मध्य सिय सोहति कैसे।
छविगन मध्य महाछवि जैसे॥

श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि छवि का सार भाग यहीं है, यथा—

दूलह राम सीय दुलही री।
घनदामिनि वर-वरन हरन मन,
सुन्दरता नखसिख निबही री॥ १॥

ब्याह विभूषन बसन-विभूषित,
सखि अवली लखि ठगि सी रही री।
जीवन-जनम लाहु लोचन फल,
है इतनोई लह्यो आजु सही री ॥ २ ॥
सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि,
मथन अमियमय कियो है दही री।
मथि माखन सियराम सँवारे,
सकल भुवन छवि छाँछ मही री ॥ ३ ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख,
सोभा अतुल न जात कही री।
रूप रासि विरचि विरंचि मनो,
सिला लवनि रतिकाम लही री ॥ ४ ॥

अतः कविता-सरित् की छवि सीयस्वयम्वर ही है।

नदी-नाव—यात्रियों के सुभीते के लिए नदियों में अनेक सुन्दर सुन्दर बड़ी-बड़ी नौकाएं होती हैं।

(१) कुछ ऐसी होती हैं जो इस पार और उस पार आया जाया करती हैं (२) कुछ ऐसी होती हैं, जो निश्चित स्थानों पर जाने के लिए छूटती हैं (३) कुछ ऐसी होती हैं जो सहायक स्रोतों से आ जाती हैं (४) और कुछ छोटी ऐसी होती हैं, जो कार्य्य विशेष के लिए छूटा करती हैं। कहना नहीं होगा कि चौथे प्रकार की नाव असंख्य होती हैं।

पटु प्रश्न अनेका—जिस प्रकार नदी में नाव होती है, इसी प्रकार से इस कवितासरित् में प्रश्न ही नाव है, उसी प्रश्न का सहारा लेकर ही निर्दिष्ठ स्थान की प्राप्ति होती है—विषयविशेष का ज्ञान होता है। एवम् इस कवितासरित् में भी उपर्युक्त चारों प्रकारों की नावें हैं। दो प्रश्न भारद्वाज के, बारह प्रश्न उमा के, और बारह प्रश्न गरुड़ के हैं, कुल चौबीस प्रधान प्रश्न हैं, वैसे छोटे-छोटे प्रश्न प्रसङ्गों में अनेक आए हैं, उनकी संख्या की आवश्यकता भी नहीं है।

भारद्वाज के मुख्य प्रश्न--

(१) रामु कवन प्रभु पूछौं तोहीं।
कहिय बुझाइ कृपानिधि मोहीं॥
राम एक अवधेस कुमारा।
तिन्हकर चरित विदित संसारा॥
नारिविरह दुख सहेउ अपारा।
भयउ रोष रन रावनु मारा॥

दो०—

प्रभु सोइ रामु कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम्ह कहहु विवेक विचारि॥

(२) जैसे मिटै मोह भ्रम भारी।
कहहु सो कथा नाथ विस्तारी॥

इन दोनों में पहिली नाव पहिले प्रकार की है, अर्थात् लोक और वेद दोनों कूलों में विचरण करती है।

और दूसरी नाव दूसरे प्रकार की है, अर्थात् नदी के उद्गम से लेकर मोहाने तक इसका सञ्चार है। उमा ने आठ प्रार्थनाएं की हैं और बारह प्रश्न किए हैं, प्रार्थनाओं के उत्तर में शिव जी ने समझाया है, वे भी एक प्रकार से प्रश्नोत्तर कहे जा सकते हैं। उन्हे पहिले प्रकार का प्रश्न समझिये।

उमा के बारह प्रश्न—

(१) प्रथम सो कारन कहहु विचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।
(२) पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।
(३) बालचरित पुनि कहहु उदारा।
(४) कहहु जथा जानकी विवाही।
(५) राजतजासो दूषन काही॥
(६) वनवसि कीन्हे चरित अपारा।
कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥

(७) राजबैठि कीन्हीं बहु लीला।
सकल कहहु संकर सुख सीला ॥
(८) बहुरि कहहु करुनायतन,
कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबंस मनि,
किमि गवने निज धाम ॥
(९) पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी ॥
(१०) भगति ज्ञान विज्ञान विरागा।
पुनि सब वरनहु सहित विभागा ॥
(११) औरौ रामरहस्य अनेका।
कहहु नाथ अति विमल विवेका ॥
(१२) जो प्रभु मैं पूछा नहि होई।
सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥

इनमें से पहिले आठ तो दूसरे प्रकार की नाव हैं, और शेष चार तीसरे प्रकार की नाव हैं।

फिर उमा के छ प्रश्न—

(१) सो हरि-भगति काग किमि पाई।
(२) राम परायन ज्ञानरत गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन पाएउ काग शरीर ॥
(३) यह प्रभुचरित पवित्र सुहावा।
कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
(४) तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी।
(५) गरुड़ महाज्ञानी गुनरासी।
हरिसेवक अति निकट-निवासी ॥
तेहि केहि हेतु काग सन जाई।
सुनी कथा मुनि निकर बिहाई ॥

(६) कहहु कवन विधि भा संवादा।

गरूड़जी के चार प्रश्न—

(१) कारन कवन देह यह पाई।

(२) रामचरित सर सुन्दर स्वामी।
पाएहु कहाँ कहउ नभगामी॥

(३) तुम्हहिं न व्यापत काल अति कराल
कारन कवन।

(४) प्रभु तव आश्रम आए मोर मोह भ्रम भाग
कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग।

(५) ज्ञानहि भगतिहि अंतर केता।
सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता॥

ये पाँचो प्रश्न भी तीसरे प्रकार के हैं।

गरुड़जी के सात प्रश्न—

(१) सब ते दुर्लभ कवन सरीरा।
(२) बड़ दुख कवन (३) कवन सुख भारी॥
(४) संत-असंत-मरम तुम जानहु।
तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
(५) कवन पुन्य श्रुति-विदित विसाला।
(६) कहहु कवन अघ परम कराला॥
(७) मानस रोग- कहहु समुझाई।

ये सातो नाव चौथे प्रकार की हैं।

केवट कुसल—केवल नाव से काम नहीं चलता, प्रत्येक नावों के लिये केवट चाहिये, और वह भी अपने काम में कुशल हो, प्रासव्य स्थान में नाव को निर्विघ्न पहुँचा सके। अतः उपर्युक्त नावों के लिए नियत केवट हैं। नाव और केवट का साथ न छूटने पावे, नहीं तो पार पाना कठिन हो जाता है।

उतर सविवेका—विवेक के साथ जो उत्तर दिये हुए हैं, वे ही कुशल केवठ हैं। प्रश्न और उत्तर का साथ बना रहना चाहिए, अर्थात्

उत्तर पढ़ने के समय याद रहना चाहिए कि किस प्रश्न का उत्तर हो रहा है, तभी कथा ठीक तरह से समझ में आवेगी। निम्नलिखित केवट रूपी उत्तर प्रश्न के क्रमानुसार दिये हुये हैं।

भरद्वाज के प्रथम प्रश्न का उत्तर—बालकाण्ड दोहा ४७, 'कहौ सो मतिअनुसार अब उमासम्भु संवाद' से लेकर दोहा ११६ 'पुनि पुनि प्रभुपद कमल गहि जोरि पंकरुहपानि' तक।

भरद्वाज जी के दूसरे प्रश्न का उत्तर—बालकाण्ड दोहा ११६ से उत्तर काण्ड के दोहा १३० की दूसरी चौपाई 'रघुपति कृपाँ जथा मति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा' तक।

उमा के आठो विनय पर शङ्कर भगवान् का समझाना। बालकाण्ड के दोहा १११ 'मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहर कीन्ह' से लेकर दोहा ११६ तक।

उमा के प्रथम प्रश्न का उत्तर—बालकाण्ड दो० ११६ से दो० १८८ के ३ चौ० यह सब रुचिर चरित मैं भाखा। अब सो सुनहु जो बीचहिं राखा। इस कथा की फलश्रुति 'सोइ वसुधातल सुधातरंगिनि। भयभञ्जनि।

उमा के दूसरे प्रश्न का उत्तर—बा० का० दो० १८८ चौ० ३ से दो० १९६ 'सकल तनय चिरजीवहु 'तुलसिदास के ईस' तक। इसकी फलश्रुति 'भ्रमभेद भुअंगिनि।

उमा के तीसरे प्रश्न का उत्तर—बा० का० दों० १९६ से दो० २०५। भगत हेत नानाविधि करत चरित्र अनूप' इसकी फलश्रुति 'असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधुविबुध कुलहित गिरि नंदिनी' तक।

उमा के चौथे प्रश्न का उत्तर—बा० का० दो० २०५ से बालकाण्ड के अन्त तक। फलश्रुति संतसमाज पयोधि रमा सी।

उमा के पांचवें प्रश्न का उत्तर—अयोध्या काण्ड के प्रारम्भ से १३२ दो० "आइ नहाये सरित वर सिय समेत दोउ भाई। फलश्रुति—विश्वभार भर अचल छमासी।

उमा के छठे प्रश्न का उत्तर—अयोध्याकाण्ड के १३२ दोहा से लङ्काकाण्ड की समाप्ति तक फलश्रुति नमगन मुद मसिजग जमुना सी।

उमा के सातवें प्रश्न का उत्तर--उत्तर काण्ड के प्रारम्भ से लेकर दो० ४६ 'जन्म जन्म प्रभुपद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु' तक। फलश्रुति 'जीवनमुकुति हेतु जनु कासी।'

उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ४६ से ५१ 'सांभा सिंधु हृदय धरि गए जहाँ विधिधाम' तक फलश्रुति रामहि 'प्रिय पावनि तुलसी सी।'

उमा के नवें प्रश्न का उत्तर--उ० का० दो० ११० की आठवीं चौ०, "जेहि पूछौं सोइ मुनि अस कहई' से दो० १११ की तीसरी चौ०, वारि वीचित्र गावहिं वेदा' तक। फलश्रुति—तुलसिदास हित हिय हुलसी सी।

उमा के दसवें पूश्न का उत्तर—उ० का० दो० ११६ चौ० १ 'इहाँ न पच्छपात कछुराखौं' से दो० १२० 'लय पाइय सो हरभगति देखु खगेस विचारि' तक। फलश्रुति—सिवपिूय मेकल सैल सुता सी। सकल सिद्धि सुख संपति रासी।

उमा के ग्यारहवें पृश्न का उत्तर—उ० दो० ७३ 'सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनिमन भ्रम होइ' से दो० ९३ 'तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन' तक। फल श्रुति—सदगुन सुरगन अंब अदिति सी। रघुवर भगति प्रेम परमिति सी।

उमा के बारहवें प्रश्न का उत्तर—

उत्तर काण्ड दो० १२१ और १२२ विनिश्चतं वदामितेन अन्यथा वचांसि मे। हरिनराभजन्ति ये ऽतिदुस्तरं तरन्ति ते तक। फलश्रुति—राम-कथा मंदाकिनि चित्रकूट चितचारु। तुलसी सुभग सनेह वन सिय-रघुबीर विहारु।

पुनः उमा के छ प्रश्नों में से पहिले का उत्तर—राम रहस्य-प्रकरण में उक्त है, तीसरे प्रश्न का उत्तर लोमश ऋिष के प्रकरण में उक्त है, छठे का उत्तर मूल रामचरितमानस प्रकरण में उक्त है।

उमा के दूसरे पूश्न का उत्तर—गरुण जी के पूथम पूश्न के उत्तर में उक्त है।

उमा के चौथे पूश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ५६ और ५७

उमा के पाँचवें पूश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ५६ से ६२ 'असजिय जानि भजहिं मुनि मायापति भगवान्, तक।

गरुड़ जी के पूथम पूश्न क उत्तर—उत्तर का० दो० १११ और ११२ "निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं विरोध।

गरुड़ जी के दूसरे प्रश्न का उत्तर—उत्तर का दो ११३ चौ० ६ रामचरितमानस भाषा से।

गरुड़ जी के तीसरे प्रश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ११३ 'कामरूप इच्छा मरन ज्ञान विराग निधान।

गरुड़ जी के चौथे प्रश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ११३ 'व्यापिहिं तहँ न अविद्या जो जन एक प्रजंत'।

गरुड़ जी के पाँचवें प्रश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० ११५ चौ० ७ से दो० १२० 'जय पाइय सो हरि भगति देखु खगेस विचारि।

गरुड़ जी के सप्त प्रश्न का उत्तर—उत्तर का० दो० १२१ 'भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाँहि हरिजान।

उत्तर सविवेका—उपर्युक्त पद्ध प्रश्न है और सविवेक उत्तर हैं।- इन प्रश्नोंत्तरों की उपमा नाव और केवट से दी। पहिले प्रश्न के ही भलीभाँति समझने की आवश्यकता है, इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि कौन सी बात मन में रख कर प्रश्न किया जा रहा है, तत्पश्चात् प्रश्न को आँख के सामने रखते हुए उत्तर को पढ़ना चाहिए। उसमें भी ध्यान रहे कि उत्तर विवेकसहित दिया गया है जहाँ विवेकसहित न मालूम हो, वहाँ समझना चाहिए कि भाव ठीक तरह से नहीं आया। यथार्थ रूप से प्रश्नोंत्तर को मन में धारण करने से निश्चय भ्रान्ति का नाश होकर सत्य का उदय होता है। बीच-बीच में भी इसी भाँति समझने का प्रयत्न करना चाहिए तभी ग्रन्थ का तात्पर्य खुलता है।

सुनि अनु कथन परसपर होई।
पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी।
घाट सुबद्ध राम बर बानी॥२॥

अर्थ—सुनकर जो आपस में चरचा होती है, वही नदी में पथिक समाज शोभित है। भृगुनाथ का क्रोध इस नदी की घोर धारा है, और रामजी के श्रेष्ठ वचन ही सुदृढ़ बँधे हुए घाट हैं।

सुनि—उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों तथा प्रसङ्गों को सुन कर। भाव यह कि पूरे काव्य के श्रोतृ समाज को पुर, ग्राम और नगर कह आये हैं, अब विशेष विशेष प्रसङ्ग के श्रोताओं के विषय में कहते हैं। बहुत से श्रोता ऐसे हैं, जिन्हें प्रसङ्गविशेष प्रिय हैं, कोई सीयस्वम्बर ही सुनना चाहता है, महादेव जी की बारात का हाल सुनने से प्रेम है, किसी को अङ्गदसम्वाद पसन्द है, तो कोई परशुराम-सम्वाद का रसिक है।

अनुकथन परस्पर होई—सुनने के बाद जो आपस में चरचा होती है। भाव यह कि सुनकर जिन्होंने कि उस विषय की चरचा न किया, उन्होंने निसन्देह कथा में ध्यान नहीं दिया, जिनके हृदय में कुछ संस्कार पड़ा वे ही आपस में चरचा करते हैं, उन्हीं का श्रवण श्रवण है। बिना मनन के श्रवण अकिञ्चित्कर है, यह परस्पर का अनुकथन उसी मन्त्र का व्यक्त-रूप है।

पथिक समाज—भाव यह कि नाव और केवट निष्प्रयोजन नहीं होते। जब नाव और केवट का वर्णन किया तो उस पथिक समाज का भी वर्णन प्राप्त है, जो उन नाव और केवटों से काम लेते हैं, अतः सुनने के बाद जो आपस में चरचा होती है वही इन नाव और केवटों से काम लेने वाला पथिक समाज हुआ। ऐसे चरचा करनेवालों का निर्दिष्ट स्थान है, जहाँ पर वे प्रश्न प्रतिवचन द्वारा पहुँचना चाहते हैं। जिन्होंने चरचा नहीं की उन्हें कहीं जाना आना नहीं है, अतः वे नाव और केवट से काम नहीं लेते, यों ही घूमते-घामते उधर आ निकले थे।

सोह सरि सोई—नदियों में यात्रियों का नाव पर चलना भी नदी की शोभा है। इसी भाँति इन प्रश्न प्रति बचन की चरचा इस कवितासरित की एक शोभा है। स्थल से यात्रा करने से जल द्वारा यात्रा करना विशेष मनोरम तथा आयासरहित होता है, इसी भाँति किसी विषय के समझने से विषय-निरूपण प्रश्न प्रतिबचन रूप में होने से विशेष मनोरम हो जाता है, और शीघ्र समझ में आता है। सुनने के बाद आपस में चरचा करना, उस प्रश्नप्रतिबचन से लाभ उठाना और उक्त काव्य की प्रतिष्ठा करना है।

घोर धार—नदी की धारा सर्वत्र समान नहीं होती, कहीं वह बड़ा उग्ररूप धारण कर लेती है, उसका वेग बड़ा भयङ्कर हो जाता है, उसे ही "घोर धार" कहते हैं। वह धारा जिस ओर घूमती है कोसों तक करार काटती चली जाती है, उस घोर धार में जो पड़ा उसकी भी खैर नहीं है।

भृगुनाथ रिसानी—परशुरामजी का क्रोध वैसी ही घोर धारा है, जिधर यह घूमी उधर चाहे लौकिक कूल हो चाहे वैदिक कूल हो, किसी को नहीं छोड़ती, काटती ही चली जाती है। लौकिक कूल का काटना, यथा—

निपटहि द्विज करि जानेहि मोहीं।
मैं जस विप्र सुनावौं तोहीं॥
चाप स्रुवासर आहुति जानू।
कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सोहाई।
महा महीप भये पसु आई॥
मैं येहि परशु काटि वलि दीन्हें।
समर-यज्ञ जप कोटिक कीन्हें॥

वैदिक कूलका काटना, यथा—

गरभन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।

इसी भाँति जो परशुराम जी की क्रोध धार में पड़ा सो गया, यथा--

जासु परसु सागर खर धारा।
बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥

घाट सुबद्ध—घोर धार अपने कूलों को तोड़ डालती है, परन्तु जहाँ घाट दृढ़ बँधा हुआ है, वहाँ वह धारा टक्कर खाकर घूम जाती है, उधर काट नहीं कर सकती। इसीलिये 'सुबद्ध' कहा। दृढ़ बँधा हो तो घोर धार के सामने ठहरे, नहीं तो घोर धार उसे भी बहा ले जाती है।

राम बर बानी—रामजी की श्रेष्ठ वाणी है, वही बँधा हुआ घाट है, उसे पाकर भृगुनाथ की रिसानि टक्कर खाकर घुम गई, आई तो बड़ी वेग से, यथा—

वेगि देखाउ मूढ़ नत आजू।
उलटौं महि जहँ लहि तब राजू॥

संघर्ष भी खूब हुआ, १४ टक्कर खाकर धारा पलट गई।

सुनि मृदु गूढ़ वचन रघुपतिके।
उघरे पटल परसुधर मतिके॥
राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु मोर मिटइ संदेहू॥
अनुचित बचन कहेउँ अज्ञाता।
छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

श्रीमानस प्रसंगस्य टीकां भाव प्रकाशिकाम्।
रामार्पणं करोम्यद्य तेन मे प्रीयताम् प्रभुः॥

—oo:o:oo—

॥ श्री राम ॥

मानस सङ्घ के नियम

उद्देश्य—विश्व कल्याण ।

उपाय—गो० तुलसीदास कृत रामचरितमानसका प्रचार ।

सदस्य—रामचरितमानसके पाठ करने की योग्यता वाले सभी स्त्री-पुरुष इसके सदस्य हो सकेंगे ।

कर्त्तव्य—(१) प्रत्येक सदस्य को वर्ष में कम से कम दो बार रामचरितमानसका नवान्हिक अथवा मासिक पारायण करनेका वचन देना होगा ।

(२) यथासम्भव यह पारायण चैत्र शुक्ल १ से ९ तक तथा आश्विन शुक्ल १ से ९ तक किये जांयगे ।

(३) अधिक संख्यामें पारायण करना उत्तम है ।

(४) प्रत्येक सदस्यका कर्त्तव्य होगा कि वह कमसे दो नये सदस्य बनावे ।

शुल्क—प्रत्येक सदस्य को प्रवेश शुल्क ।|) प्रधान कार्यालय को देना होगा । वार्षिक या मासिक चन्दा न लगेगा । प्रधान कार्यालय से नियमादि की तथा अन्य वितरणार्थ प्रकाशित पुस्तकें, आवश्यक सूचनाएँ आदि मुफ्त मिला करेंगी ।

कार्यालय—सङ्घ का प्रधान कार्यालय रामवनमें है ।

शाखा—(१) जिस स्थान में ९ सदस्य हो जाँयगे वहाँ शाखा स्थापित हो जायगी ।

(२) शाखाके सदस्यों को मिलकर अपना मन्त्री चुन लेना चाहिये ।

(३) चैत्र तथा आश्विनके पारायण सामूहिक कराने का प्रबन्ध कराना शाखाका कर्त्तव्य होगा ।

(४) मन्त्री प्रचार कार्य तथा शाखा सम्बन्धी पत्र व्यवहार किया करेंगे ।

शारदाप्रसाद

मन्त्री, मानस सङ्घ, रामवन, सतना,

मानस प्रेमियो,

मणि——माला

मंगाइये ।

मणि—हिन्दी का एक मात्र श्री रामचरितमानस तथा तुलसी सम्बन्धी मासिक पत्र "मानस-मणि" वार्षिक मूल्य ३)

माला-धार्मिक (विशेष कर रामायण सम्बन्धी) पुस्तकों की मालायें

१—श्री मानस रत्नावली (ग्रन्थमाला)

२—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

३—श्री कौशलेन्द्र कथामाला

४—श्री रामदास भक्तमाला

प्रत्येक माला में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक प्रेस में हैं।

२) जमा करके स्थाई ग्राहक बनिये। जैसे जैसे पुस्तकें छपेंगी, आपके नाम भेजी जाँयगी।

मणि-माला मंगाने का पता—

मंत्री

मानस संघ

पो० रामवन

वाया सतना ।

हमारा अबतकका प्रकाशन

१—श्रीरामचरितमानसमें ब्रह्मचर्य जीवन |—) अप्राप्य
(श्री स्वामी स्वरूपानन्दजी)

२—श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी |—)
(श्रीजानकी राय 'जनक')

३ -श्रीरामचरितमानसमें वीर रस |—)
(श्रीशारदाप्रसादजी)

४—श्रीरामचरितमानसमें शत्रुघ्न कुमार |)
(श्रीसुदर्शन सिंह जी)

५—नव निर्झरिणी [नवधा भक्ति पर ९ कहानियां] |—)
(श्री 'चक्र')

६—शबरी मंगल =)
(श्रीशम्भुप्रसादजी बहुगुना एम० ए०)

७—संगीत रामायण (द्वितीय संस्करण) ≈)
(श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

८—मानस-प्रसङ्ग [पाँचो भाग]
(मानस राजहंस श्री पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी)

९—ध्यान के समय ||≈)
(एफ० जे० अलेक्जेण्डर)

१०—अष्टदल (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

११—नूतन नवरत्न (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

मिलने का पता:—

मन्त्री—मानससंघ,

पो० रामवन, वाया सतना ।





